अध्याय–चतुर्थ

भारतीय कला में देव–देवियॉ

भारतीय कला में देव–देवियाँ :

पूर्वी उत्तर प्रदेश के कला जगत में विभिन्न देवों और देवियों के मूर्तियों का कलात्मक विवरण हमें प्राप्त होता है। इन देवी देवताओं में त्रिमूर्ति का अंकन महत्वपूर्ण है।

त्रिमूर्ति :

सृष्टि में सर्व प्रथम हिरण्यमय अण्ड उत्पन्न होता है। उस अण्ड के गर्भ से जिस सृजनात्मक शक्ति का स्फुरण एवं जन्म होता है वही सर्वलोक पितामह ब्रह्मा हैं। ब्रह्मा फैलते, बढ़ते एवं व्याप्त होते हुए बल के उपलक्षण मात्र हैं। ये विष्णु और शिव के बिना अकेले नही रह सकते। उन दोनो के बिना इनकी सत्ता निराधार है। इन तीनों में न कोई बड़ा है न छोटा। जहॉ तक रहता है वहॉ अन्य दोनो भी उसके साथ ओत प्रोत रहते हैं।[1] हॉ इतना अवश्य है साम्प्रदायिकता के आधार पर ब्रह्मा के उपासक ब्रह्मा को महत्व देकर इन्हीं के ब्रह्मा, विष्णु तथा रूद्र ये तीन रूप स्वीकार कर लेते हैं। जैसा कि मार्कण्डेय पुराण का कथन है –

ब्रह्मत्वे सृजते लोकान रूद्रत्वे संहस्यापि

विष्णुते चाप्युदानस्तिस्रोडवस्थाः स्वयम्भुवः।[2]

महाकवि कालीदास इसी भावना का अनुमोदन करते हुए कहते हैं कि ब्रह्मा ही तीन गुण के अनुसार त्रिमुर्ति रूप में प्रकट होते हैं।

नमस्त्रिमूर्तय..... भेदमुपेयुषे।।

विसमिस्त्वमव..... कारणतां गतः।।[3]

इसी प्रकार वैष्णव विष्णु को तथा शैव शिव को प्रधान कारण मानते हैं। ब्रह्मा यदि सृष्टि की रचना करते हैं तो विष्णु पालन करते तथा शिव संहार करते हैं, किन्तु आपस में मिली हुई शक्तियॉ हैं, इसी भावना के आधार पर पुराणों में त्रिदेववाद का जन्म हुआ।

पुराणों में त्रिदेव एवं त्रिमूर्ति की सत्ता का व्यापक एवं स्पष्ट उल्लेख आराध्यदेव हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता तथा शिव संहारकर्ता है। फिर भी तीनों देवों के कार्य अलग–अलग है फिर भी वे तीनों एक हैं। पुराण साहित्य इन तीनों की एकता प्रदर्शित करने में अपनी सार्थकता स्वीकार करता है। तीनों एक हैं अथवां एक ही तीनों रूपों से वर्तमान हैं, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन पुराणों में हुआ है। पुराणों का यही उद्घोष है कि एक ईश्वरीय शक्ति तीन गुणों के रूप में प्रकट होती है।[4] विष्णु धर्मोत्तर का कथन है कि – विष्णु की सृष्टि करने वाली ब्राह्मी मूर्ति राजसी पालन करने वाली वैष्णवी मूर्ति सात्विकी तथा संहार करने वाली रौद्री मूर्ति तामसी कहलाती है–

ब्राह्मी तु .....संहार कारिणी।[5]

त्रिमूर्ति का यह उदाहरण असम्भावित विचारों एवं उत्पत्तियों का ही प्रतिफल है। सूर्य, हर एवं हिरण्यगर्म त्रिमूर्ति रूप में स्थित होने में सत्यता का कुछ अंश है और इनके उदाहरण भी प्राप्त होते है। सूर्य का विष्णु के साथ सम्बन्ध वैदिक काल से ही प्रसिद्ध था।

इस प्रकार का उदाहरण प्राचीन 'पन्ना राज्य' के मधिया नामक स्थान से प्राप्त होता है। जिसमें सूर्य, शिव तथा ब्रह्मा का चित्रण हैं चिदम्बरम[6] के एक मन्दिर में एक तीन सिर वाली मूर्ति है, जिसके आठ हाथ हैं, वह खड़ी प्रतिमा है जो सूर्य की कही जाती है। खजुराहों के दूलादेव नामक शिव मन्दिर में तीन सिर तथा आठ हाथ वाली वैठी प्रतिमा प्राप्त होती हैं।[7]

एलिर्फेण्टा की गुफा में एक ऐसी प्रतिमा प्राप्त होती है, जिसके तीन मुख हैं, बीच वाला मुख अत्यन्त सौम्य शाश्वत हैं, दाहिनी ओर का मुख सुन्दर लेकिन वांयी ओर का मुख अत्यन्त भयानक है।

ब्रह्मा :

हिन्दू त्रिमूर्ति के अन्तर्गत ब्रह्मा का सर्वप्रथम स्थान है, वे सृष्टि के निर्माता तथा सभी देवों के नेता हैं। आज भी वैष्णव तथा शैव सम्प्रदाय की भॉति उनका कोई पृथक सम्प्रदाय न बन सका, विष्णु तथा शिव की भॉति अधिकांश मन्दिरों में इनकी प्रतिमाओं की स्थापना न हो सकी, फिर भी इनकी प्रतिष्ठा एवं व्यापकता सर्वत्र दर्शनीय है।

विविध शिल्प ग्रन्थों में ब्रह्मा के स्वरूप से सम्बन्धित प्रसंग प्राप्त होते हैं।[8] पुराणों में दो भुजाओं के स्थान पर चार भुजाओं वाला वतलाया गया है और हाथ में दण्डकमडण्लु और अक्षयमाला, वेद, स्तुक, स्रध, कुश आज्यस्थाली आदि उपकरण हैं। वैष्णव पुराण में वे कमण्डलु अक्षयमाला धारण किये हएु चार भुजा वाले कहे गये हैं।[9] इन पुराणों में ब्रह्मा के पॉच रूपों का वर्णन किया गया है। जिनमें चतुर्भुज, कमलासन, हंसवाहन, रथारूढ़, प्रजापति ये पॉच रूप हैं।

विष्णु धर्मोत्तर चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्ति को कमल के आसन पर बैठी हुई बनाने का आदेश देता है –

पद्मपत्रासनस्थस्तु ब्रह्मा कार्यश्चतु चतुर्मुखः[10]

विष्णु पुराण में भी नाभि से उत्थित कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा के रूप का वर्णन है।

मथुरा कला में ब्रह्मा की प्रतिमा चार मुख वाली बनवायी गयी। कभी–कभी किसी प्रतिमा में केवल तीन सिर ही बने हुए प्राप्त होते हैं, जो केवल सामने से देखने में आते हैं। इसमें ब्रह्मा का दाहिना हाथ अभयमुद्रा में है।[11] वे गोल उदर वाले जटाओ से युक्त तथा चार हाथों वाले हैं।

मथुरा म्यूजियम में ब्रह्मा की एक ऐसी प्रतिमा रखी जिसके तीन सिर एक हाथ प्रदर्शित किये गये और चौथा सिर तीनों सिरों के ऊपर बना है, यह प्रतिमा कुषाण काल की है।[12]

दशावतार मन्दिर के शिलापट्ट पर ब्रह्मा की कमलासन प्रतिमा बनी हुई, जो चालुक्य काल की प्रतिमा है, जिसमें ब्रह्मा चार मुख वाले, हाथों में दण्ड, कमण्डलु धारण किये वरद मुद्रा में दिखाये गये हैं।

बनर्जी महोदय ने ब्रह्मा की एक ऐसी प्रतिमा का वर्णन किया है जो पत्थर में कटी हुई है। ब्रह्मा विश्वपदम् पर विराजमान हैं और ललिताक्षेप मुद्रा में हैं। यह प्रतिमा राजशाही म्यूजियम में रखी हुई हैं।[13]

मथुरा संग्रहालय में तीन सिर वाली ब्रह्मा की प्रतिमा के पीछे चौथा सिर चक्र के रूप में सूचित किया गया है ऐसा वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा है[14]। मध्य युग तक ब्रह्मा की प्रतिमाएं सावित्री के साथ समाज में खूब पूजी जाती रहीं, किन्तु मुस्लिम काल के अन्त तक ब्रह्मा की उपासना कम होने लगी।

विष्णु :

वैष्णव पुराणों के आराध्य देव विष्णु हैं। वे सृष्टि का पालन करने वाले हैं। श्रीमद्भागवत का कथन है कि पांचरात्र विधि से उपासना करने वाले भक्त चतुर्व्यूह के रूप में विष्णु की उपासना करते हैं।[15]

वासुदेव :

यह विष्णु का सर्व प्रमुख रूप है, वासुदेव सर्वव्याप्त है और सम्पूर्ण विश्व इनमें व्याप्त है। इस नाते इनका नाम वासुदेव –

सर्वत्रासो समस्त च वसंत्यत्रेति वे येतः।[16]

ततः सः वासुदेवेति विद्धदिभः परिपठ्यते।।

राव महोदय के ग्रन्थ से स्पष्ट होता है कि इन्होंने वासुदेव के कृष्ण वासुदेव अर्थात् मानवीरूप का वर्णन किया है।[17] लेकिन बैनजी महोदय ने वासुदेव के देवी रूप को सर्व

प्रमुख माना है।[18] अतः वासुदेव रूप सिद्ध होते हैं – दैवीरूप, लौकिक एवं मानवी रूप दो रूप हैं।

वासुदेव के ये दोनो रूप मूर्ति कला तथा चित्रकला के उपादान के रूप में सबसे अधिक भव्य सुन्दर, आकर्षक तथा उपयुक्त माने गये हैं। महाभारत वासुदेव को नारायण का मानवी रूप स्वीकार करता है –

यस्य नारायणो ..... वासुदेवः प्रतापवन।।[19]

यही मानवी वासुदेव, कृष्ण द्वापर के पूर्ण अवतार हैं। महाभारत ने भी वासुदेव की भी उपेक्षा नहीं की है। उसमें भी नारायण के वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरूद्ध इन चार रूपों को स्वीकार किया गया है।[20] वासुदेव सर्व प्रमुख तथा प्राचीन मूर्ति होने के कारण आदि मूर्ति हैं[21] इस परम् तत्व रूप में वे सभी प्राणियों के विद्यमान रहते हैं[22] किन्तु अपने रूप में वे वसुदेव के पुत्र राजा, कुटनीतिज्ञ, धीरशिरोमणि, योद्धा, मित्र, सहायक, पथ प्रदर्शक तथा दार्शनिक, उपदेशक एवं सुधारक हैं। यही कारण है कि विष्णु का वासुदेव कृष्ण रूप जितना विस्तार से पूजा गया, उतना अन्य रूप ख्याति न पा सका।[23] जितने भी वैष्णव रूप हैं, सभी वासुदेव के रूप की विशेषताओं से पूर्ण है। इनमें वासुदेव, अजन्मा, अक्षम, अनन्य, तथा एक रूप है।[24] वासुदेव के रूप में विष्णु एक मुख वाले तथा देखने में बहुत सुन्दर है, इनकी चार भुजाएं है। जल से भरे हुए मेघों के समान श्याम (नीला) वर्ण के शरीर पर सभी प्रकार के सुन्दर आभूषण से भूषित रहते हैं।

एक वक्त्रस्चतुर्बाहुः सौम्यरूपः सुदर्शनः।

सलिलाहमाहमेंधाभः सर्वाभरण भूषितः।।[25]

शंख के समान उतार चढ़ाव वाले इनके कण्ठ पर शुभ रेखाएं अंकित रहती है, उनके कानों में कुण्डल हाथों में अंगदी तथा केयूर गले में सुन्दरमाला, हृदय पर कौस्तुभ मणि और सिरे पर किरीट मुकुट शोभित रहता है –

कण्ठेन ..... कुण्डलोत्तर भूषिणा।।

अंगदी ..... शिरसा तथा।।[26]

चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय की वेसनगर के समीप उद्यगिरि की गुफा में एक विष्णु की मूर्ति है जो विष्णुार्मोत्तर में वर्णित वासुदेव से कुछ मिलती जुलती है। यह प्रतिमा अत्यन्त जीर्ण अवस्था में है। इसकी चार भुजाएं और शरीर पर सभी आभूषण तथा वे दो भुजा वाले कही चार भुजा वाले, कहीं आठ भुजा वाले चित्रित किये गये हैं। कही पर उनकी मूर्ति अनेक भुजा वाली हो जाती है। कही पर वे अकेले रहतें हैं। किसी समय लक्ष्मी जी इनके साथ रहती हैं। सुन्दर वस्त्राभूषणों को धारण करने वाले विष्णु के रूप का ज्ञान करने के लिए निम्न विषय विचारणीय है।

भुजाएं एवं आयुध, वस्त्र, आभूषण, वाहन, देवी

वैष्णव पुराणों में वर्णित विष्णु के विभिन्न रूपों का आधार उनकी भुजाएं हैं, भुजाओं की संख्या के आधार पर उनका रूप तीन प्रकार का कहा जा सकता है–

द्विभुजा रूप, चतुर्भुज रूप, अष्टभुज रूप

विष्णुपुराण में कहा गया है कि लम्बी चार अथवा आठ भुजा वाले विष्णु का ध्यान करना चाहिए।[27]

मथुरा से एक संयुक्त खण्डित प्रतिमा प्राप्त हुई है।[28] जिसमें मध्यवाली मुख्य प्रतिमा के चार हाथ हैं, उसके दो हाथों में गदा एवं शंख है, तीसरा हाथ अभयमुद्दा में है और चौथा हाथ खण्डित है, इस देवता के दाहिने कन्धे से एक अन्य पुरूष आकृति निकल रही है, उसके सिर पर एक अन्य मूर्ति है। मुख्य देवता के ऊपर एक आकृति दिखायी गयी है, जो खण्डित हो चुकी है।

चुर्तव्यूह प्रतिमा का निर्माण कुषाण काल से ही आरम्भ हो गया था।

5वीं शती की कानपुर के भीतर गॉव के मन्दिर की मूर्ति मिली है[29], जिसमें विष्णु आदि शेष पर शयन कर रहे हैं। शेष के दो फण, उन पर छाया कर रहे हैं, उनके नाभि से निकले कमल पर ब्रह्मा आसीन हैं।

लखनऊ संग्रहालय में एक अष्टभुजी विष्णु की मूर्ति सुरक्षित है, इन मूर्तियों को देखने से स्पष्ट होता है कि इनके चार हाथों में पाषाण, खड्ग और वाणों का पुंज है। वाईं ओर तीन हाथ दिखाई देते हैं, जिसमें एक हाथ में चक्र है।[30]

उत्तर मध्य कालीन चम्पा से, झॉसी, राजस्थान (आवानेरी) आदि स्थान हैं, जहॉ विष्णु के विभिन्न अवतारों की प्रतिमा प्राप्त होती है।

शिव :

त्रिमूर्ति में शिव सृष्टि का संहार करने वाले कहे गये हैं, ये ही ऐसे देव हैं, जिनकी उपासना वैदिक काल से पूर्व सैन्धव घाटी की सभ्यता से आरम्भ हो चुकी थी। जिसके प्रमाण इतिहासकारों द्वारा दिये जा चुके है। वैदिक काल में शिव का रूप अधिक प्रसिद्ध रहा है।[31] उपनिषदों में रूद्र के अनेक नामों के साथ शिव का उल्लेख हुआ (श्वेताश्वतर 30) सांख्यायन तथा कौषीतकि उपनिषदों में शिव, रूद्र महादेव, महेश्वर, ईशान आदि नाम इन्हे सर्वप्रमुख देवता सिंद्ध करने के लिए, प्रयुक्त हुए हैं।[32] वेवर महोदय ने इनमें से महादेव तथा ईशान रूप को सर्व प्रमुख बताया है[33] अथर्ववेद में भव, शर्व, पशुपति, उग्र, महादेव तथा ईशान इन सात नामों का उल्लेख हुआ है। वर्तमान में भी शिव के लिंग की उपासना सम्पूर्ण भारत में प्रचलित है प्रत्येक नगर, ग्राम सड़क, जंगल, पर्वत आदि पर स्थापित हुए शिव के लिंग के रूप की उपासना होती है। शिव ही एक ऐसे देव हैं जो यति तथा भोगी, राजा तथा गरीब दोनों के उपास्य देव बन सकें। भण्डारकर महोदय तो पशुपति के रूप उन्हे जंगल वासियों के उपासादेव स्वीकार करते हैं।[34] अतः सभ्य जाति के नहीं अपितु असभ्य एवं जंगली जातियों के भी शिव उपास्य देव रहे हैं।

वैष्णव पुराणों में शिव के रूप तथा आकार का वर्णन तो अवश्य हुअ है लेकिन सीमित रूप में। शिव की उपासना हमेशा से दो रूपों में होती रही है। अतः उनकी प्रतिमाएं भी दो रूपों में प्राप्त होती है –

1. लिंग प्रतिमा
2. रूप अथवा मानवी प्रतिमा

लिंग रूप की उपासना उतनी ही प्राचीन है जिनती वृक्ष पूजा आदि। डॉटर एम0 वेस्ट्राप महोदय का कथन है कि शिव के लिंग की उपासना न केवल भारतीयों अपितु अनेक अन्य देशों में प्रसिद्ध थी। लिंग रूप की उपासना शैव सम्प्रदाय का मुख्य अंग है। शिव के अन्य मानवी रूपों की उपासना लिंग उपासना की भॉति प्रसिद्धि प्राप्त न कर सकी। शिव के मन्दिरों के बीच की प्रतिमा लिंग रूप में होती है।[35] जैसा कि पूर्व अध्याय में कहा जा चुका है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय शिव प्रमुख उपास्य देव थे। मुद्राओं पर बनी अनेक प्रतिमाएं मथुरा[36] में प्राप्त एक शिव की[37] चतुर्भुज प्रतिमा जिसके सिर के ऊपर शिवलिंग बना हैं विमकडफाइसेस की मुद्रा पर शिव के मानव रूप का अंकन है। जिनका विस्तार से वर्णन राव[38] तथा बनर्जी[39] महोदय ने अपने ग्रन्थों में किया है।

वैष्णव पुराणों में लिंग निर्माण का अधिक विस्तार से वर्णन नहीं हुआ है, विष्णुधर्मोत्तर पुराण में लिंग निर्माण पर कुछ आदेश दिये गये और शिवलिंग के तीन भाग कहे गये हैं –

1. भोग पीठ 2. भद्रपीठ 3. ब्रह्मपीठ

लिंग का ऊपरी भाग भोग कहा गया है, यह वृत्ताकार बनता है, उसके नीचे का भाग आठ कोणों वाला और नीचे का भाग चौकारे रहता है। इस प्रकार के लिंग में बहुमूल्य रत्न लगने होने चाहिए।

भोगोस्य.....भूरिदखिणम।[40]

लिंग का निर्माण इस प्रकार से होना चाहिए इसका गोलाकार भाग दिखायी पड़े। आठ कोणों वाला भाग पिण्डिका में बना हो और चौकोर भाग ब्रह्मपीठ में हो। इसका निर्माण भद्रपीठ के नीचे होता है।

वृत्तं.....विदुर्वुधा।[41]

लिंग भाग ऊपर की ओर उठा हुआ होता है, इस बनी सुन्दर रेखाएँ ऊपर जाकर तिरछी हो जाती है।[42] श्रीमदभागत में सभी देवगण शिव की स्तुति करते हैं, समय लिंग रूप की ओर भी संकेत करते हैं और उसे पृथ्वी तथा आकाश तक व्याप्त बतलाते हैं।[43]

शिल्प ग्रन्थों में तीन प्रकार के लिंगों का वर्णन हुआ है जो क्रमशः निस्कल सकल तथा मिश्र है।[44] केवल लिंग रूप में बना हुआ आकार लिंग प्रतिमा का रूप सकल तथा मुख लिंग रूप मिश्र होता है –

निस्कलं.....लक्षितम् ।[45]

मयमतं ग्रन्थ में भी इसी प्रकार की परिभाषा का उल्लेख हुआ है।[46] इन तीनों प्रकार के लिंगों के दृष्टान्त वैष्णव पुराणों में प्राप्त होते हैं, विष्णुधर्मोत्तर में जिस लिंग के निर्माण का आदेश दिया गया है वह निष्कल लिंग है, श्रीमद्भागवत तथा विष्णु आदि पुराणों में शिव के जिन अनेक रूपों का वर्णन हुआ है वे शिव के सकल रूप हैं। सद्योजात, नामदेव, अघोर, तत्पुरूष तथा ईशान इन पॉच मुखो वाला लिंग रूप मिश्र का उदाहरण है।

राव महोदय ने लिंग दो प्रकार के बतलाये है।[47]–चल, अचल

चल लिंग हल्के होते हैं और सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाये जा सकते है।

वस्तु के आधार पर ये छः प्रकार के होते है –

1. मृण्मय 2. लौहज 3. रत्नज 4. दासज 5. शैलज 6. क्षणि

आगम ग्रन्थों में अनेक प्रकार के लिंगों का वर्णन हुआ है[48] सुप्रभेदागम में दस प्रकार के (स्वायम्भुव, पूर्ण, दैवत, गणपहा, आसार, सुर, आर्ष, राक्षस, मानुष तथा वाण) लिंग कहे गयेहै।[49] कामिकागम में इन दस में से पूर्ण, आसुर, सुर, राक्षस, इन चार को नहीं स्वीकारा गया है। मुकुटागम दैविक, आर्थिक, मानुष इन चार ही लिंगों को स्वीकार करता है।[50]

लिंगों में प्रतिमा निर्माण की दृष्टि से केवल अन्तिम के दो मानुष तथा वाण लिंग उपयुक्त हैं।

मनुष्यों के द्वारा निर्मित लिंग मानुष कहलाते हैं।[51] इसके तीन भाग– ब्रह्म भाग, विष्णु भाग, रूद्र भाग। रूद्र भाग ही पूजा भाग अथवा भोग कहलाता है। इसी पर जल डाला जाता है और फल तथा अन्य पूजा की वस्तुएं चढ़ायी जाती हैं। रूद्र भाग पर कुछ सुन्दर

रेखाएं बनती हैं, जिन्हें ब्रह्मसूत्र कहते हैं। लिंग में पीठिका का बनना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि लिंग आधेय और पीठ आधार है। यह पीठ चौकोर, छः कोण अष्टकोण किसी भी प्रकार का बनाया जा सकता है, मयमत में भद्र महाम्बुज, श्रीकर, विकर, महावज, सौम्यक, श्रीकाम्य, चन्द वज्र आदि पीठों का वर्णन हुआ है।[52] मयमत ने लिंग निवेश के अन्तर्गत छत्र, गोल, अण्डे, अर्द्धचन्द्र के आकार का भोग भाग बनाने का आदेश दिया गया है।[53] गोल तथा ऊपर की ओर उठते हुए लिंग भाग को विष्णुधर्मोत्तर अधिक श्रेष्ठ मानता है और उसी को बनाने का आदेश भी देता है।[54]

मुख लिंग के अन्तर्गत एक मुख से पॉच मुख बनते हैं, एक मुख लिंग की प्रतिमा[55] लखनऊ संग्रहालय में प्राप्त होती है। मुख लिंग का उदाहरण दक्षिण भारत से प्राप्त गौडिमल्लम लिंग है।[56]

सूर्य :

सूर्य को प्रकृति की आदिम शक्तियों में से एक है, आकाश में प्रतिदिन प्राची में उदित होने वाले सूर्य को आदिम् काल के मानव ने आश्चर्य मिश्रित आदर से देखा होगा। सूर्य उन प्राकृतिक शक्तियों में से एक है, जिसे मानव सर्वप्रथम देवत्व प्रदान किया। इसी नाते सूर्योपासना की परम्परा विश्व के अनेक प्राचीन सभ्यताओं में प्रचलित रही।[57]

कुषाण नरेश कनिष्क की मुद्राओं पर 'मियरों' (सूर्य नाम खुदा हुआ है इसका का सम्बन्ध ईरानी मिथ्र से किया जाता है जो एक सूर्य पूजक सम्प्रदाय था इन साक्ष्यों से इसकी तिथि भण्डारकर महोदय ने प्रथम शती ई0 निश्चित की है।[58] महाभारत और रामायण में सूर्य के मानवीय रूप का उल्लेख हुआ लेकिन यह स्वरूप उनका प्रतिमाशास्त्रीय रूप नहीं है।

देवी :

नारी पुरूष की अर्द्धांगिंनी मानी जाती है। यह भावना आज से नहीं वरन् अत्यन्त प्राचीन काल से मान्य रही है। इसी ने आदिकाल में शक्ति का रूप ले लिया यही

आदिशक्ति लक्ष्मी दुर्गा के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रह्मा जी ने जब प्रजापति मॉ की रचना की उसके बाद बिना स्त्रीतत्व के आगे रचना करने में असमर्थ हुए। अतः स्पष्ट है कि स्त्रीतत्व से शून्य रहने पर सृष्टि आगे नही बढ़ सकती। वह स्त्री और पुरूष तत्व देवी देवता के रूप प्रकट हुए।

मार्कण्डेय पुराण का देवी महात्म्य खण्ड पौराणिक काल में देवी की महत्ता का प्रदर्शन करता है। ये देवी स्तुतियॉ देवी की आदि श्रेष्ठ और साराश का प्रकटीकरण करती है। देवी के लिए प्रयुक्त हुए जगतमाता तथा जगदम्बा आदि विशेषण उनके मातृ रूप को लक्षित करते हैं। देवी का यह रूप पुराण साहित्य में अधिक स्पष्ट एवं विकसित हुआ। यहॉ तक कि दर्शन जैसा विषय भी देवी के महात्म्य से शून्य नहीं है, वेदान्तियों का माया का सिद्धान्त महामाया देवी के महत्व का प्रदर्शन करता हैं सांख्य दर्शन का प्रकृति तथा पुरूष का सिद्धान्त इसी जगदम्बा आदि शक्ति का प्रतीक है। प्रकृति को देवी एवं आदि शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है अतः सभी धर्म एवं दर्शन देवी का ही यशोगान करते प्रतीत होते हैं।

आज भी यह देवी तत्व सभी जगह मौजूद हैं किन्तु फिर भी प्रत्येक क्षेत्र, स्थान एवं धर्म में यह सत्ता विभिन्न रूप में पूजी जाती है। सभी देवों की सत्ता त्रिमूर्ति अथवां त्रिदेववाद में स्वीकार की गयी है। इस त्रिमूर्ति के साथ तीन देवियों का भी अस्तित्व माना गया और ब्रह्मा का सम्बन्ध सरस्वती, सावित्री, अथवा गायत्री से, विष्णु का लक्ष्मी से तथा शिव का पार्वती अथवा दुर्गा से बतलाया गया है, इस विषय में भी अनेक मतभेद हैं, आज भी देवों के साथ देवियों का यह विभाजन प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र स्पष्ट किया गया है किन्तु वैष्णव पुराण का कथन है अप्रत्यक्ष रूप से आदि देव विष्णु की ही शक्ति विष्णु के अनेक रूपों एवं अवतारों में विभिन्न रूप धारण कर उनके साथ रहती हैं। यदि वे अपनी ब्राह्मी मूर्ति में ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं तो शक्ति सावित्री बनकर उनके साथ रहती है। विष्णु के रूप में वह लक्ष्मी बन जाती है तथा उमा के रूप में शिव का साथ देती है। ब्रह्मा की उपासना का धीरे–धीरे ह्रास हो जाने पर समाज में विष्णु तथा शिव की महत्ता बढ़ गयी।

शिव की पत्नी भी पृथक रूप से जो उपासना होने लगी वही शाक्त सम्प्रदाय कहलाती है। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत देवियों के दो रूप प्राप्त होते हैं–वैष्णवी , शक्ति अर्थात रौद्री।

वैष्णव पुराण में जिन वैष्णवी देवियों का वर्णन हुआ वे निम्नलिखित है –

योगमाया रूप, लक्ष्मी रूप, सरस्वती रूप, भू देवी रूप रूप है।

जैन–बौद्ध कला में देवी–देवता :

बुद्ध को कला में विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता था क्योंकि महात्मा बुद्ध ने मूर्ति निर्माण का निषेध किया था। अतः प्रारम्भ में बुद्ध का प्रदर्शन प्रतीक रूप में वोधिवृक्ष, धर्म चक्र, स्तूप, त्रिरत्न, चूड़ा, भिक्षापात्र आदि को कला में अभिव्यक्त किया जाता था, इनके जन्म का चित्रण पूर्णघट से जन्म लेते पद्म–श्वेत हस्ति के माध्यम से

किया गया। जब काठी या गद्दी अश्व हों, किन्तु उस पर कोई आरूढ़ न हो, तो उसे महात्माबुद्ध के महाभिनिष्क्रमण का प्रतीक माना गया। वोधिवृक्ष को उनके सम्बोधि का प्रतीक स्वीकार किया गया और धर्मचक्र द्वारा बुद्ध के प्रथम धर्मोपदेश की घटना को व्यक्त किया गया है। स्तूप उनके महापरिनिर्वाण का प्रतीक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कुषाण युग से पूर्व बुद्ध मूर्ति का कोई उदाहरण नहीं मिलता। इनको प्रतीकों के माध्यम से कला में अपनाया गया। किन्तु इसका मूर्ति रूप में उद्भव कुषाण काल में ही हुआ। इसी आधार पर मथुरा सारनाथ तथा श्रावस्ती को बोधिसत्व अभित्ति मूर्तियों को बुद्ध की प्रारम्भिक मूर्तियां माना जा सकता है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रमुख स्थलों से प्राप्त बौद्ध मूर्तियॉ

अवलोकितेष्वर (पदमपाणि) :

गोरखपुर, 19.5 ग 8.5 सेमी0, मृत्यू द्वितीय शताब्दी ई0

ध्यानी बुद्ध, अमिताभ तथा उनकी शक्ति पाण्डरा से उत्पन्न बोधिसत्व अवलोकितेश्वर महायान सम्प्रदाय के सर्वाधिक लोकप्रिय देवता हैं। इनके हाथों में सदैव पद्मपुष्प दिखाया गया है। उपरोक्त मूर्ति में पद्मपाणि को घुटनों के बल अंजलिमुद्रा में बैठे दिखाया गया है। बांये कन्धें के ऊपर तक सनालपद्म का अंकन है। पद्म की तालिका पैरों तक की गयी है। सिर पर किये है, कानों में कुण्डल, गले में हार बॉहों में केयूर तथा वस्त्र धारण किये हैं। यह मूर्ति सम्प्रति राजकीय वौद्ध संग्रहालय गोरखपुर में स्थित है।

बोधिसत्व मूर्ति (पदमपाणि) :

कुशीनगर, 58 ग 13 सेमी0, लाल बलुआ प्रस्तर–प्रथम शताब्दी ई0

स्थानक बोधिसत्व एकभंग मुद्रा में चित्रित है। बोधिसत्व का वांया हाथ कट्यावलम्बित है तथा दाहिना हाथ कन्धे तक उठा हुआ गदानुमा वस्तु लिये हुए हैं। लाल

वलुये प्रस्तर की निर्मित मूर्ति में बोधिसत्व को अलंकृत किरीट से युक्त दिखाया गया है। जो अर्द्धवृत्ताकार रूप में है। लम्बकर्ण में आयताकार कुण्डल तथा हार पहने हुए हैं। अधोवस्त्र का अंकन है जो दोनो पैरों के बीच लटकता हुआ प्रदर्शित है। अधोवस्त्र का अंकन है, जो दोनो पैरों के बीच लटकता हुआ प्रदर्शित है। मूर्ति बांयें कुहनी के ऊपर से लेकर दाहिने कुछ नीचे तक, बीच से खण्डित हो गया था, जिसे कालान्तर में जोड़ा गया प्रतीत होता है। (फलक 1/25)

कुषाण कालीन प्राप्त बोधिसत्व मूर्तियों का शिल्पी द्वारा धोती पहने, कन्धे पर उत्तरीय रखे हुए निर्मित किया गया। इनको राजों चित मुकुट एवं आभूषणों से अलंकृत दिखाया गया है। ध्यानी बुद्धों में प्रमुख स्थान वाले अमिताभ के बोधिसत्व पद्मपाणि अवलोकितेश्वर सृजन के स्वामी हैं। अमिताभ से ही इनके उद्भव की कल्पना की गयी है।

गोरखपुर जनपद की प्राप्त पद्मपाणि की महिमा का विस्तृत उल्लेख गुणकारण्डव्यूह में किया गया है। भारतीय कला में अवलोकितेश्वर के 15 रूपों की चर्चा का ही विविध प्रदर्शन प्राप्त होता है। षडक्षरी लोकश्वर[59] सिंहलनाद[60] खसर्पण[61] लोकनाथ[62] हलाहल[63] पद्मनतेश्वर[64] हरिहरिहरिवान[65] त्रैलोक्यशंकर[66] माया जालक्रमकोध[67] नीलकण्ठ[68] सुगतिसंदर्शन[69] प्रेतसंतर्पित[70] सुखावती लोकेश्वर[71] वज्रधर्म[72] रक्त लोकश्वर[73]।

उपरोक्त सभी रूपों का उल्लेख साधन माला में उल्लिखित है, शिल्पी द्वारा इन मूर्तियों का निर्माण प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर किया जाता था।

बुद्ध मूर्ति :

सारनाथ, 2 फीट 4) इंच, चुनार या बलुआ प्रस्तर पांचवी शताब्दी ई0

बुद्ध की यह मूर्ति न मात्र सारनाथ के लिए विशेष महत्व रखती है, वरन् गुप्त कालीन सभी मूर्तियों में गौरवपूर्ण स्थान रखती हैं। चुनार के बलुए प्रस्तर से निर्मित यह मूर्ति अन्तः सौंदर्य एवं बाह्य स्निग्धता के लिए ख्यात है। इसमें बुद्ध को वज्रपर्यकासन में आसनस्थ बनाया गया है। हाथ वक्षस्थल के नीचे धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बने हैं, पीठिका पर बीच में चक्र अलंकृत प्रभामण्डल के दोनो सिरों पर दो उड़ते हुए विद्याधर इनके पवित्रता को प्रमाणित करते हैं।

माथाकुंवर बुद्ध :

कुशीनगर, 10 फीट 1 इंच ग चौ0 4 फीट 9 इंच कालाप्रस्तर, पांचवी छठी शताब्दी ई0

काले कसौटी प्रस्तर की निर्मित बुद्ध मूर्ति भूमि–स्पर्शमुद्रा में निर्मित है। इसमें भगवान बुद्ध को बोधिवृक्ष के निकट समाधि लगाकर बैठने पर 'मार' द्वारा किये गये विघ्नों को दर्शाया गया है। बुद्ध मूर्ति उल्टे कमल या दोहरे कमल के पुष्प पर पद्मासन मुद्रा में अवस्थित है, देवता का दाहिना हाथ भूमि को स्पर्श कर रहा है। सम्पूर्ण फलक में चतुर्दिक हिन्दू–देवताओं यथा सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरूण, यक्ष, कुवेर, गन्धर्व के चित्र अंकित हैं। मूर्ति के नीचे प्राप्त शिलालेख खण्डित हो गया हैं। इस प्रकार कलचुरि वंश के राजाओं की प्रशास्ति अंकित थी। इसके खण्डित लेखों में निर्माता भीम द्वितीय ज्ञात होता है। उपरोक्त बुद्ध को अर्द्धोन्मीलित नेत्र नासिकाग्र दृष्टि प्रलम्ब कर्ण में कुण्डल तथा उष्णीश युक्त कुंचित केशों के रूप में निर्मित किया गया है।

भूमिस्पर्ष मुद्रा :

कुशीनगर, 17 ग 17.5 सेमी, लाल बलुआ प्रस्तर पांचवी छठी शताब्दी ई0

माथाकुॅवर बुद्ध के समान एक अन्य बुद्ध मूर्ति भूमि स्पर्श मुद्रा में प्राप्त हुई है, जिसका शीर्ष भाग खण्डित हो गया है, किन्तु अवशिष्ट अंश से बुद्ध की भू–स्पर्श मुद्रा स्पष्ट प्रदर्शित होता है। मूर्ति में बायां कर पद्मासनस्थ पद पर रखा हुआ और दाहिना हाथ भूमि

की ओर संकेत करता हुआ प्रदर्शित है। पद्मासन मुद्रा में अवस्थित बुद्धमूर्ति में देव के दोनो पद एक दूसरे को काट रहे है, तथ्य विपरीत जंघ पर तलवे ऊपर किये आश्रित हैं, इसी मुद्रा को पद्मासन मुद्रा कहते है। (फलक 2/26)

ध्यान मुद्रा में :

कुशीनगर, 47 ग 34 सेमी, मृण्य, छठी शताब्दी ई0

ध्यानमुद्रा में निर्मित बुद्ध मूर्ति मध्य से किंचित खण्डित हो गयी है, ऐसा जुड़े हुए भाग के अवलोकन से प्रतीत होता है। नासिकाग्र दृष्टि शान्त भुजाकृति, प्रलम्ब कर्ण तथा उष्णीश मुक्त केश–विन्यास बुद्ध की स्वाभाविकता को प्रदर्शित करती है। ध्यातव्य है कि जब पद्मासन में दाहिनी हथेली बायी हथेली मे रखी गोंद में रखी गई तो उसे ही ध्याना या भोग मुद्रा कहते है। (फलक 3/27)

पद्मपाणि :

वाराणसी, 83 ग 64 सेमी, काला प्रस्तर, नवीं शताब्दी ई0

वाराणसी के पद्मापाणि बोधिसत्व की प्राप्त उपरोक्त मूर्ति सम्प्रति भारत कला भवन की निधि है। इस मूर्ति में काया–निर्माण के अन्तर्गत, इकहरी काया, मृदु अंग–प्रत्यंग उनके स्वभाविक लयात्मक सम्बन्ध और पारदर्शक वस्त्र के रूप में प्रदर्शित है। पद्मपीठ पर उपासनस्थ बुद्ध की सौम्य मुखाकृति तथा परिकर में बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित पांच प्रमुख घटनाओं की छोटी आकृतियॉ उकेरी है। जिनमें तपस्यारत बुद्ध धर्मचक्र प्रवर्तन महा–परिनिर्वाण, बुद्ध जन्म और नल गिरि–मदन से सम्बन्धित आकृतियॉ हैं, जिनके अंग प्रत्यंग से कोमलता का एहसास आभासित होता है। गोलमुखाकृति, चिकने कपोल ऊँचे नासिकाग्र तथा नेत्र को पूर्ण से खुला बनाया गया है। प्रलम्ब कर्ण, कुंचित केश विन्यास उष्णीश रूप से दृष्टिगत है। सादा प्रभामंडल तथा मालाधारी परिचारक – परिचारिकाओं को उड़ते हुए दिखाया गया है।

ध्यातव्य है कि इस युग (गुप्तोत्तर युग) में बौद्ध धर्म अनेक सम्प्रदायों में विभक्त हो गया, इसी क्रम में ध्यानी बुद्धों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अमिताभ तथा उनकी शक्ति पाण्डरा से ही बोधिसत्व पद्मपाणि अवलोकितेश्वर के उद्भव की कल्पना की गयी। भारतीय मूर्ति कला में पद्मपाणि को ही विशेष लोकप्रियता प्राप्त हो सकी है। इस क्षेत्र की प्राप्त बुद्ध शीर्ष अधिकांशतः प्रस्तर की निर्मित इनमें गोल मुखाकृति, नेत्र खुले हुए तथा सुसज्जित भौहों का चित्रण कलाकार द्वारा प्रदर्शित किया गयाहै। केश विन्यास का अद्वितीय अलंकरण है, जो चार भागों तक में विभाजित है। किन्हीं बुद्ध शीर्ष में लम्बा चेहरा तथा विशाल मस्तक बनया गया है। इस सभी मूर्तियों में प्रलम्ब कर्ण तथा सिर पर उष्णीश का अंकन है, मस्तक तथा केशों में भिन्नता दिखाने के लिए एक रेखा निर्मित किया गया है। स्मित मुस्कान एवं शान्त आभायुक्त मुखमण्डल इन मूर्तियों की प्रमुख विशेषता रही है।

जैन मूर्ति : कला

जैन तीर्थकरों के मूर्ति के निर्माण कब से हुआ यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता किन्तु इतना निश्चित है कि इन महामुनियों की अधिकांश मूर्तियॉ ध्यान–मुद्रा में ही प्राप्त होती हैं, कलाकारों द्वारा स्थानक और आसनस्थ मूर्तियों को कायोत्सर्ग मुद्रा का रूप प्रदान किया गया। इसी लक्षण के आधार पर तीर्थकर मूर्तियों के निर्माण की प्राचीनता हड़प्पा युग तक आती है क्योंकि हड़प्पा से प्राप्त मस्तकविहीन नग्न मूर्ति जैन परम्परा के पूर्णतः अनुकुल है।

मुद्राओं पर अंकित ध्यानस्थ त्रिश्रृंगयुक्त मस्तक जैन पद्मासन मूर्ति से तुलनीय है। डॉ0 ज्योति प्रसाद जैन ने ऋग्वेद के (1–1–16) मंत्र में जैन तीर्थ नेमिनाथ की कल्पना स्वीकार की है।[74] इसी संदर्भ मे डॉ0 हीरालाल जैन की धारणा है कि ऋग्वेद में शिश्न देवों का उल्लेख नग्न देवों के रूप में है तथा इन्हें अवैदिक कहा गया है, यह जैन नग्न मूर्तियों के विवरण से अधिक साम्य रखते है।[75] मुनिकान्ति सागर ने जैन साहित्य में वर्णित अनार्य आर्द्र कुमार की कथा[76] का उल्लेख कियाहै। जिसके अनुसार मगध नरेश अभय कुमार ने अपने अनार्य मित्र आद्रि कुमार को एक जिन मूर्ति उपहार में प्रदान की थी। कलिंगनरेश

खारवेल के हाथी गुम्फा के अनुसार खारवेल द्वारा उन 'जिन्' मूर्ति को पुनरधिगत किया, जिसे पहले नंद शासक ने कलिंग से चुराया था।[77] मौर्य शुग काल से भी जैन मूर्ति की उपलब्धि का प्रमाण प्राप्त होता है।

अन्य धर्मों की भॉति जैन धर्म ने प्रारम्भ में प्रतीकोपासना प्रचलित थी, जिसके अन्तर्गत श्रीवत्स एवं त्रिरत्न के अतिरिक्त लहरदार चार भुजाओं वाले स्वास्तिक, मीन मिथुन तथा वैजयन्ती आदि के अंकन किये जाते थे। इन की मूर्तियॉ एकांकी स्थानक और आसनस्थ रूप में प्राप्त होती है।

महावीर मूर्ति :

वाराणसी, 149 ग 68 सेमी, प्रस्तर, छठी शताब्दी ई0 का पूर्वाद्ध

उक्त मूर्ति महावीर यद्यपि कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थानक प्रदर्शित है, किन्तु उनके केश अलंकृत किरीट तथा शरीर को राजकीय आभूषणों से अलंकृत किया गया है। इस प्रकार की मूर्ति जीवन्त स्वामी की कही गयी है। ग्रीवा में हार, कानों में कुण्डल, अलंकृत किरीट जहॉ मूर्ति के राकीय वैभव को इंगित करते हैं वहीं कार्योत्सर्ग मुद्रा एवं ध्यानावस्थित मुखाकृति से युक्त अभय मुद्रा उनके 'जिन' रूप को व्यक्त करता है। पद्मपीठिका पर समपाद स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित 'जिन' संभवतः पद्महस्ता है। जिनके वांये कर के नीचे याक्षिणी सिद्धायिका द्विभुजी बाण धनुष लिए प्रदर्शित है। जिनके दक्षिण पार्श्व में नीचे स्थानक, मातंग यक्ष का अंकन है। वाम कर में बीजपूरक या मतंग फल लिए हैं तथा वस्त्राभूषणों में अलंकृत है। चतुर्दिक भू–स्पर्श मुद्रा, ध्यानमुद्रा, अभयमुद्रा या उपदेशात्मक मुद्रा में जैन मूर्तियॉ प्रदर्शित है। जो पीठिका और सिंहासन पर आसीन हैं। (फलक 4/28)।

महावीर मूर्ति :

देवरिया, 100 ग 60 सेमी0, काला प्रस्तर, चतुर्थ शताब्दी ई0

ध्यानमुद्रा में आसनस्थ मूर्ति खण्डित व घिसने के कारण अस्पष्ट है। योगमुद्रा में तीर्थकर के पक्ष पर श्रीवत्स लांछन का अंकन है। मूर्ति के नीचे आधार पीठिका पर दो सिंह दोनो पार्श्व में तथा मध्य में चक्र का अंकन है। तीर्थकर के शीर्ष पर तीन छत्र हैं जो क्रमशः छोटे होते चले गए है। उष्णीश युक्त केश–विन्यास प्रदर्शित है। मूर्ति का मुखमण्डल काला–प्रहार से विकृत हो गया है। मानव मुखाकृति तथा अंग यष्टि से ही मूर्ति अपने अध्यात्मिक भाव को व्यक्त करती है। पीठिका अनुचरों से युक्त है। इस युग तक महावीर का कोई विशिष्ट लक्षण निर्धारित नही हो सका था। किन्तु परवर्तीयुग में सिंह, महावीर का चिन्ह माना गया है। सिंह चिन्ह के आधार पर ही वृक्ष के नीचे अवस्थित 'जिन्' मूर्ति को महावीर से संवद्ध कर सकते हैं। (फलक 5/29)

पार्श्वनाथ :

राजघाट, वाराणसी, 138 ग 59 सेमी0, प्रस्तर, 7वीं, 8वीं शताब्दी ई0

उपरोक्त मूर्ति सम्प्रति भारत कला (क्र0 77) की निधि है, इस मूर्ति के अवलोकन से प्रतीत होता है कि मूर्ति में पाल शैली की विशेषतायें हैं, पार्श्वनाथ की पतली तथा लम्बी काया कुछ दवी हुई और फैलाव वाली दिखायी देती है। इस मूर्ति को अनलंकृत निर्मित किया गया है। इस मूर्ति में शारीरिक मुद्राओं में स्थिरता का भाव दिखता है। इसमें शारीरिक संरचना की अनुपातिक योजना दृष्टिगत होती है, उपरोक्त मूर्ति में तीर्थकर पार्श्वनाथ को प्रशान्त तथा कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है। दाहिना कर खण्डित, मुखाकृति घिसी हुई, उष्णीश का प्रत्यक्ष अंकन है। मूर्ति के घिसे होने के कारण वक्ष स्थल पर अंकित लांछन श्रीवत्स चिन्ह दृष्टिगत नहीं होता है। पार्श्वनाथ के पीछे सर्पफण का अंकन छत्र के रूप में विद्यमान हैं। मूर्ति में पार्श्वनाथ चौड़े आधे पीठिका पर स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित है, जिनके पद के पास दो मानव आकृतियॉ खण्डितावस्था में है। वायें कर के नीचे की मूर्ति पद्मानस्थ और ध्यानावास्थित मुद्रा में है। सम्पूर्ण मूर्ति एक फलक पर उत्कीर्ण है। आज भी इस समय तक कलाकारों का कार्य क्षेत्र विस्तृत हो गया था, किन्तु शास्त्रीय

नियमों के कारण जैन कलाविदों की स्वतन्त्रता नहीं रह गयी है। अतः शिल्पी द्वारा मूर्ति निर्माण नियमों में बंधकर ही रह गयी थी।

पार्श्वनाथ :

राजघाट, वाराणसी, 35 ग 43 सेमी0, प्रस्तर, 9–10वीं शताब्दी ई0

उपरोक्त प्रतिमा जैन तीर्थकर पार्श्वनाथ की प्रतीत होती है। पार्श्वनाथ के मूर्ति के ऊपर स्थित 5 फण इसकी प्रमुख पहचान है। पार्श्वनाथ जैन धर्म के 23वें तीर्थकर थे, मूर्ति में तीर्थकर का मात्र शीर्ष भाग ही अवशिष्ट है। तीर्थकर के सिर पर घुँघराले केश उष्णीश रूप में निर्मित हैं। अर्धोन्मीलित नेत्र, कर्णपाश, भूमध्य में ऊर्णा तथा पूर्ण कपोल निर्मित यह मूर्ति अपने 5 सर्पफणटोप के कार निश्चित रूप में पार्श्वनाथ की मूर्ति पहचानी जा सकती है। तीर्थकर के सिर के पीछे पंखुड़ी का अंकन प्रभामण्डल का निर्माण करती प्रतीत होती है। फणों में दाँहिने से पहला खण्डित है। दूसरा भी किंचित खण्डित है किन्तु अन्य तीन स्पष्ट परिलक्षित होते है। यह फर्ण ऊर्जा युक्त नेत्र और नासिकायुक्त निर्मित है। सम्भवतः फणों के ऊपर स्वस्तिक, रत्नपात्र त्रिरत्न, पूर्णघाट, तथा मीन–युगल का अंकन किया गया है। जिसमें त्रिरत्न, पूर्णघट की आकृति स्पष्ट है। सर्पफण के ऊपर दोनों ओर फल में हस्ति का अंकन है। इन हस्तियों के मध्य में मानवाकृति (सम्भवतः वक्ष) मूर्ति निर्मित है।

उपरोक्त प्रतिमाओं के आलोचनात्मक विवेचना सें ज्ञात होता है कि जैन तीर्थकरों की स्थानक मूर्तियॉ प्रायः नग्न अर्थात कायोत्सर्ग मुद्रा में निर्मित की गयी हें। कायोत्सर्ग मुद्रा तीर्थकर प्रतिमाओं का विशिष्ट लक्षण है, जिसके आधार पर तीर्थकर प्रतिमाओं की प्राचीनता हड़प्पायुग तक जाती है। हड़प्पा से प्राप्त मस्तकहीन नग्न मूर्ति जैन परम्परा को ही द्योतित करता है। सांसारिक आडम्बरों से दूर इन महामुनियों की अधिकांश मूर्ति ध्यान मुद्रा में ही मूर्तिकार द्वारा निर्मित की गयी है। इस नग्न तथा ध्यानस्थ मूर्तियों के निर्माण के पीछे श्रमण परम्परा ही उत्तरदायी रही है और श्रमण परम्परा जैन धर्म में ब्राह्मण एवं बौद्ध धर्म से प्राचीनतर है। पुनः ऋग्वेद के शिश्न देवों का उल्लेख जैन नग्न मूर्तियों के विवरण, से

अधिक साम्य रखता है। इस प्रकार जैन तीर्थकरों का कला में अंकन प्राचीन कला से होता रहा है।

जैन प्रतिमाओं के निर्माण हेतु माध्यम रूप में अलग–अलग प्रकार के पाषाणों के 'चयन का उल्लेख भी शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थामें में उपलब्ध हैं।[78]

अतः स्पष्ट है कि विवेच्य काल में जैन कला अपने विकसित अवस्था में थी।

जैन देव–देवियाँ

चक्रेश्वरी :

चक्रेश्वरी की प्राचीनतम स्वतंन्त्र मूर्ति इसी क्षेत्र से मिली है। त्रिभंग में खड़ी यह चतुर्भुज मूर्ति देवगढ़ के मन्दिर 12 (862) ई0 की भित्ति पर है। लेख में देवी को चक्रेश्वरी कहा गया हे। यक्षी के चारों हाथों में चक्र है। देवी का गरूड़वाहन दांहिने पार्श्व में नमस्कार मुद्रा में खड़ा है।[78] ल0 दसवी शताब्दी ई0 की एक चतुर्भुज मूर्ति धुविला राज्य संग्रहालय, नवगांव में भी सुरक्षित है। गरूड़वाहना यक्षी के करों में वरदमुद्रा चक्र एवं शंख प्रदर्शित है। किरीट मुकुट के शोभित यक्षी के शीर्षभाग में एक लघु 'जिन' की आकृति उत्कीर्ण है।[79] समान विवरणों वाली दसवीं शती ई0 की एक अन्य चतुर्भुज मूर्ति वाले हारी (जबलपुर) से मिली है।[80]

दसवी शती ई0 मे चक्रेश्वरी की चार से अधिक भुजाओं वाली मूर्तियॉ भी उत्कीर्ण हुई। दो अष्ट भुजाओं वाली मूर्तियों (10वीं शती ई0) ग्यासपुर में माला देवी मन्दिर के शिखर पर उत्कीर्ण है।

दसवीं शती ई0 की एक दशभुजा मूर्ति पुरात्व संग्रहालय मथुरा (डी6) में है। (चित्र 44) समभंग में खड़ी चक्रेश्वरी का गरूड़वाहन पक्षी रूप में आसन के नीचे उत्कीर्ण है। राज संग्रहालय लखनऊ[81] में सिरोनी खुर्द (ललितपुर) से मिली दसवीं शती ई0 की एक दशभुजा मूर्ति (जे 883) है। किरीट मुकुट से शोभित गरूड़वाहन चक्रेश्वरी के नौ सुरक्षित हाथों में

व्याख्यान मुद्रा, पद्म, खड़ग, उणीर, चक्र, घण्टा, पद्म एवं चाप प्रदर्शित है। ऊपरी भागों में उदीयमान आकृतियॉ भी उत्कीर्ण है।

अजिता :

जिन अजितनाथ की यक्षी को श्वेताम्बर परम्परा में अजिता (या अजित वला या विजया)[82] और दिगम्बर परम्परा में रोहिणी नाम दिया गया है। दोनो परम्पराओं में चतुर्भुजा यक्षी को लोहासन पर विराजमान बताया गया है।

श्वेताम्बर परम्परा :

निर्वाण कलिका में लोहासन पर विराजमान चतुर्भुजा अजिता के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं पाश और बायें हाथ में अंकुश एवं फल के प्रदर्शन का विधान है।[83] अन्य ग्रन्थों में भी उपुर्यक्त लक्षणों के ही उल्लेख है।[84]

दिगम्बर परम्परा :

प्रतिष्ठासार संग्रह में लोहासन पर विराजमान चतुर्भुजा रोहिणी के हाथों में वरदमुद्रा, अभय मुद्रा, शंख एवं चक्र के अंकन का निर्देश है।[85] अन्य ग्रन्थों में भी विवरण प्राप्त होता है।[86]

मूर्ति परम्परा :

उत्तर प्रदेश मालादेवी मन्दिर (ग्यासपुर, विदिशा) एवं देवगढ़ में रोहिणी की दसवीं–ग्यारवहीं शती ई0 की तीन मूर्तियॉ मिली है। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति (10वीं शती ई0) उत्तरी मण्डप के अधिष्ठान पर उत्कीर्ण है। इसमें द्वादशभुजा रोहिणी ललितमुद्रा में लोहासन पर विराजमान है, लोहासन के नीचे एक अस्पष्ट सी पशु आकृति (सम्भवतः गजमस्तक) उत्कीर्ण है। पक्षी के छः अवशिष्ट हाथों में पदम, वज्र, चक्र, शंख, पुष्प और पदम प्रदर्शित है। देवगढ़ में रोहिणी की दो मूर्तियॉ हैं (एक मूर्ति (1059 ई0) मन्दिर 1 के सामने के स्तम्भ पर है। (1–4–7) इसमें अष्टभुजा रोहिणी ललित मुद्रा में भद्रासन पर

विराजमान है। आसन के नीचे गोवाहन (चित्र 47) उत्कीर्ण है। रोहिणी वरदमुद्रा, अंकुश वाण, चक्रपाश, धनुष, शूल एवं फल से युक्त है। दूसरी मूर्ति (11वीं शती ई0) मन्दिर 12 के अर्धमण्डप के समीप के स्तम्भ पर है, इसमें गोवाहना रोहिणी चतुर्भूजा है और उसकी भुजाओं में वरदमुद्रा वाण धनुष एवं जलपात्र है।

महाकाली (या पुरूषदत्ता) यक्षी :

महाकाली 'जिन' सुमतिनाथ की यक्षी हैं। श्वेतांवर परम्परा में यक्षी को महाकाली और दिगम्बर परम्परा में पुरूषदत्ता नाम से सम्बोधित किया गया है।

मूर्ति 40 पुरूषदत्ता की केवल दो मूर्तियॉ मध्यप्रदेश में ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर तथा उड़ीसा में बारभुजी गुफा से मिली है। माला देवी मन्दिर की मूर्ति (10वीं शती ई0) मण्डप की दक्षिणी जंघा पर है, जिसमें पुरूषदत्ता पद्मासन पर ललित मुद्रा में विराजमान हैं। उसका गजवाहन आसन के नीचे उत्कीर्ण है। चतुर्भूज यक्षी के करों में खड़ग, चक्र, खेटक और शंख प्रदर्शित है। गजवाहन एवं चक्र के आधार पर देवी की पहचान पुरूषदत्ता से की गयी है। वारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी दस भुजा है और उसका वाहन मकर है। यक्षी की अवशिष्ट दाहिने हाथ में वरदमुद्रा, चक्र, शूल और खड़ग तथा बांये हाथ में पाश, फलक, हल, मुद्रगार और पदम है।[87] खजुराहों की दो सुमतिनाथ की मूर्ति में द्विभुजा यक्षी सामान्य लक्षणों वाली हैं यक्षी के कर अभयमुद्रा में है (या पुष्प) और फल प्रदर्शित है। विमल वसही की सुमतिनाथ की मूर्ति में अम्बिका निरूपित है।

मातंग यक्ष :

मातंग जिन सुपार्श्वनाथ का यक्ष है। श्वेताम्बर परम्परा में मातंग का वाहन गज और दिगम्बर परम्परा में सिंह है।

मूर्ति परम्परा :

विमल वसही के रंगमण्डप से सटे उत्तरी छज्जे पर एक देवता की अतिभंग में खड़ी षड्भुज मूर्ति उत्कीर्ण है, देवता का वाहन गज है। उसके चार हाथों में वज्र, पाश, अभयमुद्रा एवं जलपात है तथा शेष दो मुद्राएं व्यक्त करते हैं। देवता की सम्भावित पहचान मातंग से की जाती है, मातंग की कोई स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है।

विभिन्न क्षेत्रों की सुपार्श्वनाथ की मूर्तियों (11वीं, 12वं शती ई0) में यक्ष का चित्रण प्राप्त होता है। पर इनमें पारम्परिक यक्ष नहीं निरूप्ति है। सुपार्श्व से सम्बद्ध करने के लक्ष्य से यक्ष को सामान्यतः सर्प फणों के छत्र से युक्त दिखाया गया हैं देवगढ़ के मन्दिर 4 की मूर्ति (11वीं शती ई0) में तीन सर्प फणों के छत्र से युक्त द्विभुज यक्ष के हाथों में पुष्प एवं कलश है। राज्य संग्रहालय में (लखनऊ) (जे 935, 11वीं शती ई0) की एक मूर्ति में तीन सर्प फणों वाला के छत्रवाला यक्ष चतुर्भुज है, जिसके हाथों में अभयमुद्रा चक्र, चक्र एवं चक्र प्रदर्शित है। कुम्भारिया के नमिनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप की मूर्ति (1157 ई0) में गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथों में वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं धन का थैला है, विमलवसही को देव कुलिका 11–12वीं की मूर्ति में गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसके करों में वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं फल प्रदर्शित है।

शान्ता (या काली) यक्षी :

शान्ता (या काली) जिन सुपार्श्वनाथ का यक्षी है। श्वेताम्बर परम्परा में चतुर्भुजा शान्ता गजवाहना एवं दिगम्बर परम्परा में चतुर्भुज काली वृषभ वाहन है।

मूर्ति परम्परा :

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियॉ देवगढ़ (मछिन 12, 862 ई0) एवं वारभुजी गुम्फा के सामूहिक अंकनों में उत्कीर्ण है। इन मूर्तियों में यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित है। देवगढ़ में सुपार्श्व की चतुर्भुजा यक्षी मयूरवाहिनी नामवाली है। मयूरवाहन से युक्त यक्षी के करों में व्याख्यान मुद्रा, चामरपंख, पुस्तक एवं शंख प्रदर्शित है।[88] यक्षी का निरूपण स्पष्टतः सरस्वती से प्रभावित है। वारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी अष्टभुजा है और

उसका वाहन सम्भवतः मयूर है। यक्षी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, फलों के भरा पात्र, शूल खड्ग और वाम मे खेटक, शंख मुद्रगर एवं शूल प्रदर्शित है।[89]

जिन संयुक्त मूर्तियों में भी यक्षी का पारम्परिक कोई स्वतंत्र स्वरूप नहीं परिलक्षित होता है। देवगढ़ (मंदिर 4 एवं) राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे 935) की दो सुपार्श्वनाथ की मूर्तियों में तीन सर्फ फणों के छत्रों वाली द्विभुज यक्षी के हाथों में पुष्प और कलश प्रदर्शित है। कुम्भारियॉ के महावीर एवं नेमिनाथ मन्दिरों की दो मूर्तियों में यक्षी अम्बिका है। पर विमलवसही की देव कुलिका 19 की मूर्ति में सुपार्श्व के साथ यक्षी रूप में पद्मावती निरूपित है।[90]

विजय (या श्याम) यक्ष

विजय (या श्याम) जिन चन्द्रप्रभ का यक्ष है। श्वेताम्बर परम्परा में द्विभुज विजय का वाहन हंस है और दिगम्बर परम्परा में चतुर्भुज श्याम का वाहन कपोत है।

मूर्ति प0 यक्ष की एक भी स्वतंत्र मूर्ति नहीं मिली है। जिन संयुक्त मूर्तियों (9वीं–12वीं शती ई0) में चन्द्र प्रभ का यक्ष सामान्य लक्षणों वाला है।[91] इनमें द्विभुज यक्ष अभयमुद्रा (या फल) एवं धन के थैले (या फल या कलश या पुष्प) से युक्त है। देवगढ़ के मन्दिर 21 की मूर्ति (11वीं शती ई0) में यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथों में अभयमुद्रा में गदा पद्म एवं फूल प्रदर्शित है।

भृकुटि (सर ज्वालामालिनी) यक्षी

ज्वालामालिनी जिन चन्द्रप्रभ की यक्षी है। श्वेताम्बर परम्परा में चतुर्भुजा भृकुटि (या ज्वाला) का वाहन कराल है और दिगम्वर परम्परा में अष्टभुजा ज्वालामालिनी का वाहन महिष है।

मूर्ति परम्परा :

यक्षी की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तियॉ मिली हैं। ये मूर्तियॉ देवगढ़ (मन्दिर 12, 862 ई0) एवं वारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रणों में उत्कीर्ण है। देवगढ़ में चन्द्रप्रभ के साथ 'सुमालिनी' नाम की चतुर्भूजा यक्षी आमूर्तित है (चित्र 48)[92] यक्षी के तीन हाथों में खड्ग अभयमुद्रा एवं खेटक उत्कीर्ण है, चौथी भुजा जानु पर स्थित है। वाम पार्श्व में सिंहासन उत्कीर्ण है। सुमालिनी का लाक्षणिक स्वरूप निश्रित है। 16वीं महाविद्या महामानसी से प्रभावित है।[93] वारभुजी गुफा की मूर्ति में सिंहवाहना यक्षी द्वादशभुजा है। यक्षी के हाथों में अभयमुद्रा (या पुष्प) और फल (या कलश या पुष्प) प्रदर्शित है। में संयुक्त मूर्ति (9वीं, 12वं शती ई0) कौशाम्बी, देवगढ़, खजुराहों एवं राज्य संग्रहालय लखनऊ में है। इनमें अधिकांशतः द्विभुजी यक्षी सामान्य लक्षणों वाली है। यक्षी की दाहिनी भुजाओं में वरदमुद्रा, कृपाण, चक्रवाण, गदा एवं खड्ग और वायीं में वरदमुद्रा, खेटक, धनुष, पाश एवं घण्ट प्रदर्शित है।[94] सिंहवाहन के अतिरिक्त मूर्ति की अन्य विशेषताएं सामान्यतः दिगम्बर ग्रन्थों से मेल खाती है।

देवगढ़ (मन्दिर 200, 21) एवं खजुराहों (मन्दिर 32) की तीन चन्द्र प्रभा मूर्तियों में यक्षी चतुर्भूजा है, यक्षी के दो हाथों में पद्म (पुष्प) एवं पुस्तक और शेष दो में अभयमुद्रा, कलश एवं फल में कोई दो प्रदर्शित है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जिन संयुक्त मूर्तियों में यक्षी को पारम्परिक या स्वतन्त्र स्वरूप में अभिव्यक्ति नहीं मिली है।

सुतारा यक्षी :

सुतारा जिन सुविधिनाथ की यक्षी है। श्वेताम्बर परम्परा में यक्षी को सुतारा और दिगम्बर परम्परा में महाकाली कहा गया है।

महाकाली की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तियॉ मिली है। ये मूर्तियों देवगढ़ (मन्दिर 12, 862 ई0) और बारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रणों में उत्कीर्ण है। इनमें देवी के निरूपण में पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं। देवगढ़ में पुष्पदत्त के साथ 'बहुरूपी' नाम की सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजी यक्षी आमूर्तित हैं। यक्षी के दाहिने हाथ में चामर, पुष्प और वाया जानु पर स्थित है।[95] वारभुजी गुफा की मूर्ति में दशभुजा यक्षी वृषभवाहना है। यक्षी के

दक्षिण करों में वरदमुद्रा में चक्र (?) यक्षी, फलो से भरा पात्र (?) एवं चक्र और वाम में अर्द्धचन्द्र तर्जनीमुद्रा, सर्प पुष्प (?) एवं मयूर पंख प्रदर्शित है।

कुमार यक्ष :

कुमार जिन वासु पूज्य का यक्ष है। दोनो परम्पराओं में उसका वाहन हंस है, जैसा कि आज भी कुमार नाम हिन्दू कुमार (या कार्तिकेय) ग्रहण किया गया है पर जैन यक्ष के लिए स्वतन्त्र लक्षणों की कल्पना की गयी है।[96] केवल प्रवचनसारीद्वार में वाण के स्थान पर वीणा मिलता है।[97]

कुमार यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। विमलवसही की देव कुलिका यक्षी वसुपूज्य की मूर्ति में सर्वानुभुतियक्ष निरूपित है।

बला (या जया) यक्षी

वला जिन कुथुनाथ की यक्षी है, श्वेताम्बर परम्परा में चतुर्भुज बला है[98] मयूरवाहना और दिगम्बर परम्परा में चतुर्भुजा जया शूकरवाहना है।

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियॉ मिली हैं। ये मूर्तियॉ देवगढ़ (मन्दिर 12, 862 ई0) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों में उत्कीर्ण है। देवगढ़ में कुंथुनाथ के साथ चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है।[99] यक्षी के तीन करों में चक्र (छल्ला) पदम एवं नरमुण्ड प्रदर्शित है और एक कर जानु पर स्थित हैं। यक्षी का वाहन नर है जो देवी के समीप भूमि पर लेटा है, ज्ञातव्य है कि श्वेताम्बर परम्परा की 8वीं महाविद्या महाकाली को नरवाहना बताया गया है, पर यक्षी के आयुध महाविद्या महाकाली से पूर्णतः भिन्न है। अतः नरवाहन और करों में नरमुण्ड तथा चक्र के प्रदर्शन के आधार पर हिन्दू महाकाली या चामुण्डा का प्रभाव स्वीकार करना अधिक उपर्युक्त होगा।[100] वारभुजी गुफा की मूर्ति कुंथु की दशभुजा यक्षी महिषवाहना हैं। यक्षी के दक्षिण करों में वरमुद्रा, दण्ड अंकुश (2) चक्र एवं अक्षमाला (2) और वाम मे तीन कांटों वाला आयुध (त्रिभुज) चक्र, शंख (2) पुष्प एवं कलश प्रदर्शित है।[101] राजपुताना संग्रहालय, अजमेर एवं विमलबसही (देवकुलिका 35) की कुंथुनाथ की मूर्तियों में यक्षी अखिका है।

तारावती यक्षी :

तारावती जिन अरनाथ की यक्षी है। श्वेताम्बर परम्परा में चतुर्भुजा धारणी (या काली) का वाहन पुष्प है और दिगम्बर परम्परा में चतुर्भुजा तारावती का वाहन हंस है।

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियॉ मिली हैं। ये मूर्तियॉ देवगढ़ मन्दिर (12, 862 ई0) एवं बार भुजी गुफा के समूहों में उत्कीर्ण है। देवगढ़ में अरनाथ के साथ 'तारा देवी' नाम की द्विभुजा यक्षी निरूपित है।[102] यक्षी की दाहिनी भुजा जानु पर स्थित है वायी में पुष्प है। वारभुजी गुफा की मूर्ति में भी यक्षी द्विभुजा है और उसका वाहन सम्भवतः हाथी है। यक्षी के हाथों वरदमुद्रा एवं सनाल पुष्प प्रदर्शित[103], उपयुक्त दोनो मूर्तियों में यक्षी की एक भुजा में पुष्प का प्रदर्शन श्वेताम्बर परम्परा से निर्देशित हो सकता है।[104] स्मरणीय है कि दोनो मूर्तियों दिगम्बर स्थलों से मिली है, राज्य संग्रहालय, लखनऊ की जिन संयुक्त मूर्ति में द्विभुजी यक्षी सामान्य लक्षणों वाली है।

चामुण्डा यक्षी :

गान्धारों जिन नेमिनाथ की यक्षी है। श्वेताम्बर परम्परा में चतुर्भुजा गान्धारी का वाहन हंस और दिगम्बर परम्परा में चामुण्डा का वाहन मकर है।

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियॉ मिली हैं। ये मूर्तियॉ देवगढ़ (मन्दिर 12, 862 ई0) एवं वारभुजी गुफा के समूँहों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में नेमिनाथ के साथ सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी उत्कीर्ण है। यक्षी के दाहिनें हाथ में कलश है और वॉया हाथ जानु पर स्थित है।[105] बारभुजी गुफा की मूर्ति में नेमि की यक्षी त्रिभुजी, चतुर्भुजा एवं हंसवाहना है। जिसके करों में वरदमुद्रा, अक्षमाला, त्रिदण्डी एवं कलश प्रदर्शित है। यक्षी का निरूपण हिन्दू ब्रह्माणी से प्रभावित है।[106] लूणवसही की जिन–संयुक्त मूर्ति में यक्षी अम्बिका है।

कुश्माण्डी यक्षी :

अम्बिका जिन नेमिनाथ की यक्षी है, दोनो परम्पराओं में सिंहवाहना यक्षी के करो में आम्रलुम्बि एवं बालक के प्रदर्शन का निर्देश है।

उत्तर प्रदेश इस क्षेत्र में ल0सातवीं आठवीं शती ई0 में अम्बिका की जिन संयुक्त और नवीं शती ई0 में स्वतन्त्र मूर्तियों का उत्कीर्णन आरम्भ हुआ है। सम्पूर्ण मूर्तियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अम्बिका के साथ पुत्र का अंकन सर्व प्रथम इसी क्षेत्र से शुरू हुआ। पुत्र का अंकन सातवीं 8वीं शती ई0 में और आम्रलम्बि एवं सिंहवाहन का नवी–दसवीं शती ई0 में आरम्भ हुआ (चित्र–26) अम्बिका की प्रारम्भिक स्वतन्त्र मूर्ति देवगढ़ (मन्दिर 12, 862 ई0) के यक्षी समूह में हैं अरिष्टनेमि के साथ 'अम्बिका' नाम को चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है जो हाथों में पुष्प (या फल) चामर कमल एवं पुत्र लिए है।[107]

अज्ञात स्थान से प्राप्त ल0 नवी शती ई0 की एक द्विभुज मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (डी 7) में सुरक्षित है (चित्र 50) इस मूर्ति की दुर्लभ विशेषता, परिकर में गणेश कुंवर, बलराम, कृष्ण एवं अष्ट मातृकाओं का उत्कीर्णन है। अम्बिका पद्मासन ललित मुद्रा में विराजमान है और उसका सिंहवाहन आसन के नीचे अंकित है। यक्षी के दाहिने हाथ में अभयमुद्रा और बांये में पुत्र है। दाहिने पार्श्व में अम्बिका का दूसरा पुत्र भी उपस्थित है, पीठिका पर एक पंक्ति में आठ स्त्री आकृतियॉ (अष्ट–मातृकाएं) बनी है। ललित मुद्रा में आसीन इन आकृतियों में से अधिकांश नमस्कार मुद्रा में है।

पार्श्व यक्ष :

पार्श्व जिन पार्श्वनाथ का यक्ष हैं। श्वेताम्बर परम्परा में यक्ष को पार्श्व और दिगम्वर परम्परा में धरण कहा गया है। दोनो परम्पराओं सर्पफणों के छत्र से युक्त चतुर्भुज यक्ष का वाहन कूर्म है, श्वेताम्बर परम्परा में पार्श्व को गजमुख बताया गया है।

उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों की पार्श्वनाथ की मूर्तियों में भी यक्ष–यक्षी अंकित है। देवगढ़ की तीस मूर्तियों में से केवल सात ही में (10वीं–11वीं शती ई0) यक्ष–यक्षी निरूपित है।[108] छह उदाहरणों में। द्विभुज यक्ष–यक्षी सामान्य लक्षणों वाले 57 मन्दिर 9वीं की दसवीं शती ई0 की एक मूर्ति मे यक्ष–यक्षी तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त है। मन्दिर 12 के समीप की एक अरक्षित मूर्ति (11वीं शती ई0) में एक सर्पफण के छत्र से युक्त यक्ष–यक्षी चतुर्भुज है। यक्ष के हाथों में अभयमुद्रा, सर्प, पाश एव कलश है। इस मूर्ति

के अतिरिक्त अन्य किसी उदाहरण में देवगढ़ में पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्ष–यक्षी नहीं निरूपित हुए।

पार्श्व या धरण यक्ष के निरूपण में केवल सर्प फणों[109] एवं कभी–कभी हाथ में सर्प के प्रदर्शन में ही ग्रन्थों के निर्देशों का पालन हुआ 1ल0 नवी सती ई0 में यक्ष की मूर्तियों का उत्कीर्णन आरम्भ हुआ।

पार्श्व पक्ष की स्वतन्त्र मूर्ति (9वीं, 13वी शती ई0) केवल ओसिया (महावीर) ग्यासुर (मालादेवी मन्दिर) एवं लूणवसही से मिली है। लूणवसही की मूर्ति में यक्ष चतुर्भुज हैं और अन्य उदाहरणों में द्विभुज ओसिया के महावीर मन्दिर (श्वेतांवर, ल0 8वीं शती ई0) के पार्श्व की दो मूर्तियॉ मिली है। एक मूर्ति गूढ़मण्डप की पूर्वी भित्ति है, जिसमें सात सर्फ फणों के छत्र से युक्त यक्ष स्थानक मुद्रा में है और उसके सुरक्षित बांये हाथ में पुष्प हैं। दूसरी मूर्ति अर्धमण्डप के स्तम्भ पर उत्कीर्ण है।

ग. स्थानीय कला में लोक देव–देवियॉ

विष्णु मूर्ति विवरण :

1. बस्ती 18.7 ग 13 ग 3.7 सेमी0, काला प्रस्तर चतुर्थ शताब्दी ई0

2. असुरन पोखरा :– गोरखपुर, 131 ग 64 सेमी0, कालाप्रस्तर नवीं – दसवीं शताब्दी ई0

3. वेलौलीधाम, आजमगढ़, 150 ग 90 सेमी0, काला प्रस्तर, नवीं–दसवीं शताब्दी

4. वामन अवतार : रूद्रपुर देवरिया, 65 ग 47 सेमी0, काला प्रस्तर 9वीं शता0 ई0

पूर्वी उत्तर प्रदेश के अमुक स्थलों से प्राप्त देव मूर्ति विवरण असुरन पोखरा (गोरखपुर) प्राप्त विष्णु मूर्ति विवरण :

उपरोक्त स्थल से प्राप्त यह मूर्ति चतुर्भुजी रूप में हैं। उनके अधः वाम, उपरिवाम तथा दक्षिणी ऊपरी भुजाओं में क्रमशः शंख, चक्र एवं गदा है तथा दक्षिण अधः वरदमुद्रा में है। किरीट अलंकृत कर्णकुण्डल से शोभित विष्णु की, ग्रीवा में चार लड़ियों का हार तथा तीन लड़ियों की मुक्ता माला है, अलंकृत यज्ञोपवीत, मेखला एवं अधो वस्त्र से भी अलंकृत किया गया है। वैजयन्ती (माला) का का अंकन भी बड़ी सुन्दरता से किया गया है। जो जानु तक लम्बी है, भुजाओं में केयूर (वाजूवंद), करों में कंकण तथा पैर में नूपुर प्रदर्शित है। देवता के सामने की दोनो प्राकृतिक पद्म पर अवलम्बित हैं, उनके चरणों के पार्श्व से निकलते हुए दिखाये गये हैं। सभी हाथों की अंगुलियों में मुद्रायें शोभायमान हैं। पैरों के नीचे दोहरी पद्मपीठ है। अलंकृत अण्डाकार प्रभामण्डल से युक्त उनके केशों की लटें कंधे तक प्रसारित हैं।

प्रतिमा के शीर्ष पर सुन्दर कीर्तिमुख प्रदर्शित है तथा उनके नीचे दोनो ओर उड़ते हुए युग्म विद्याधरों का अंकन किया गया है, इनको मालाधारी प्रदर्शित किया गया है। इसके अतिरिक्त मध्यम में पद्म का हाथी, मय सवार, सिंह को लड़ने की मुद्रा में दर्शाया गया है। सवार कर बॉया हाथ शेर से बचाव व्यक्ति अंजलि मुद्रा में वैठा है। नीचे देवता के वाम पार्श्व में वीणाधारी सरस्वती त्रिभंग में खड़ी हैं और दक्षिण पार्श्व में दोहरे पद्मपीठ पर चवर लिए लक्ष्मी का अंकन है। लक्ष्मी के दक्षिण पार्श्व में शंख पुरूष तथा सरस्वती के वाम पार्श्व में चक्र पुरूष त्रिभंग–मुद्रा में खड़े दर्शाये गये हैं। दोनो देवियों को आभूषणों से अलंकृत

तथा केंचुकी एवं साड़ी धारण किये हुए हैं। पीठिका का आधार भाग नवरस है तथा उस पर दायी ओर मालाधारी पुरूष व वायीं ओर अंजली मुद्रा में गरूड़ विराजमान हैं। रथ पर दो नलिकाओं से झड़ते हुए पुष्प गुच्छ बनाये गये हैं।

वामन अवतार – रूद्रपुर, देवरिया :

प्राप्ति स्थल – रूद्रपुर देवरियॉ

आकार – 65 ब 47 सेमी0

पदार्थ – काला प्रस्तर

तिथि – 9वीं शता0ई0

उपरोक्त मूर्ति में वामन को समतल पीठिका पर स्थानक मुद्रा में दिखाया गया हैं। चतुर्भुजी देव के कर्ण में मकराकृत कुण्डल रूप में कर्णाभूषण सुशोभित है। धनुषाकार भौहें नुकीला नासिकाग्र तथा प्रशान्त भुजा कृति से युक्त देव की रूद्राक्ष माला, ग्रैवेयक, वनमाला, यज्ञोपवीत, अलंकृत मेखला कंकण, केयूर तथा पैरों में कड़े संयुक्त प्रदर्शित किया गया है।

महामायावी विष्णु के उपरोक्त वामनरूप से उनका शरीर छोटा होने के कारण अंग भी उसी के अनुरूप छोटे एवं सुन्दर अंकित हैं। मूर्त रूप से ब्रह्मचारी वामन रूप को प्रदर्शित करती हैं मूर्ति में वामन को कुब्जाकार तथा विशाल उदर वाला बताया गया हैं। इसके सामान्य वाम कर में दण्ड धारण किये है। देवता के सामान्य दक्षिण कर में कमण्डलु तथा अतिरिक्त कर में कौमुदुकी गदा है। वामन देव के सिर पर घुँघराले बालों का अंकन है। वक्ष स्थल पर श्रीवत्स चिन्ह का अंकन है। वामन देव के चरणों के पार्श्व में संभवतः वलि एवं उनकी पत्नी का अंकन है। दो अन्य आसनस्थ आकृतियॉ हैं। सम्भवतः दक्षिण आकृति शंख तथा वाम और चक्र पुरूष रूप में विद्यमान है।

विवेच्य क्षेत्र से प्राप्त हुई विष्णु मूर्तियों के साथ ही विष्णु के अवतारों से सम्बन्धित मूर्तियों से गुप्तोत्तर काल में विष्णु की उपासना की महत्ता द्योतित होती हैं इस समय तक

विष्णु मूर्तियों के साथ सरस्वती, लक्ष्मी का अंकन होने लगा तथा शंख और चक्र को आयुध पुरूष के रूप में अंकित किया जाने लगा। इसी संदर्भ में इनके अवतारों के रूपों का भी चित्रण सामने आया है।

इन सभी मूर्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात है कि पाल कला की मूर्तियों के समान ही यहॉ देवता के दोनों पार्श्वों से कमल निकल रहे हैं, जिनके सिरों पर पद्म का अंकन है और दोनों प्राकृतिक भुजायें उन पर स्थित है।

अतः यह सिद्ध हो जाता है कि शिल्पी ने इन मूर्तियों के निर्माण में शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों के नियमों का पालन किया है। अधिकांश मूर्तियॉ काले चमकदार प्रस्तर की निर्मित हैं।

ध्यातव्य है कि विष्णुधर्मोत्तर पुराण काली मिर्च के समान काली प्रस्तर को उत्तर शिला बताता है।[110]

जिसके दो रूप दृष्टिगत होते है। एक तो अत्यधिक काला और चमकदार (चिकना) होता है, दूसरा प्रस्तर कुछ काला तथा किंचित कपिलवर्ण का होता है। यद्यपि इनका प्रयोग कम किया गया है फिर भी यह सर्वाधिक मुलायम प्रस्तर होने के कारण प्रदर्शित करने का सशक्त माध्यम रहा है।

अतः स्पष्ट है कि विवेच्य क्षेत्र से प्राप्त विष्णु की अत्यधिक संख्या में प्राप्त मूर्तियॉ क्षेत्र पर वैष्णव धर्म के प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं और गुप्तोत्तर काल तक आते विष्णु मूर्तियों के विविध रूप उनकी महत्ता और ख्याति को व्यक्त करते रहे थे।

वैष्णव पुराणों के प्रमुख आराध्य देव विष्णु माने गये। तत्कालीन ब्राह्मण धर्म के लोक प्रियता के अन्तर्गत विष्णु मूर्ति का शिल्पी द्वारा कुशलतापूर्वक निर्माण किया गया। सृष्टि के पालनकर्ता के रूप विष्णु की पूजा विवेच्च युग में चतुर्दिक व्याप्त रही। इसी से प्रेरित होकर तत्कालीन कलाकार ने विष्णु के निर्वाध रूपों को मूर्ति के माध्यम से लोगों के समक्ष उपस्थित किया। विष्णु को द्विभुजी, चतुर्भुजी और अष्टभुजी रूप में चित्रित किया गया है।

पूर्वी उत्तर के प्रमुख क्षेत्रों से प्राप्त विष्णु की कतिपय मूर्तियों का विवरण क्रमवार के रूप में है –

विष्णु दशावतार :

प्राप्ति स्थल – खुखुन्दु, गोरखपुर

आकार – 96 ग 46 सेमी0

पदार्थ – बलुआ प्रस्तर

तिथि – 12–13 शताब्दी ई0

प्रमुख क्षेत्र से प्राप्त मूर्ति का अंकन एक फलक पर उत्कीर्ण है। चतुर्भुजी विष्णु के सामान्य दक्षिण कर वर मुद्रा में है। जिसमें चक्र का अंकन तथा उपरि दक्षिण हाथ खण्डित है। वाम सामान्य कर में शंख धारण किये है और उपरि वामकर में रूनाल पद्म का अंकन हे। समभंग स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित देवता को किरीट, कुण्डल, हार, यज्ञोपवीत, वनमाला, मेखला, केयूर तथा नूपुर धारण किये चित्रित किया गया है। इस देवता के वाम पार्श्व में लक्ष्मी का अंकन है। दोनो देवियॉ कुण्डल, हार, यज्ञोपवीत, केयूर, मेखला,नूपुर तथा मुकुट धारण किये है। पीछे सामान्य सा प्रभामण्डल का अंकन हुआ है। लक्ष्मी देवी के पार्श्व में शंख पुरूष तथा सरस्वती के पार्श्व में चक्र पुरूष का अंकन है। इनका वाम कर कट्यावलम्बित है और दक्षिण कर में क्रमशः शंख और चक्र धारण किये है। देवता को पद्म पीठिका पर स्थानक मुद्रा में चित्रित किया गया। देव के वाम पद के नीचे (अलंकृत पीठिका के) पार्श्व में नमस्कार मुद्रा में एक सेवक तथा सेविका का अंकन हुआ। देवता के दक्षिण पार्श्व में नीचे से ऊपर पशु अवतारों का अंकन हैं जिसमें से मात्र मत्स्यावतार और कूर्मावतार ही चित्रित है शेष फलक–भाग टुट चुका है। इसी प्रकार देवता के वाम पार्श्व के ऊपर से नीचे परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध तथा कल्कि (अश्वारूण) को चित्रित किया गया। यह सभी मानुषी अवतार (कल्कि के अतिरिक्त) स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित है। सबसे ऊपर चित्रित परशुराम के दक्षिण कर में परशु तथ वाम कर कटयावलम्बित है। परशुराम के नीचे

भार्गव राम का चित्रण धनुष–वाण लिये हुए किया गया हैं वाद में बलराम के दखिण हाथ में मूसल किये हैं और वाम कर कटि पर अवस्थित दिखाया गया हैं। यह छोटी और ऊंची धोती धारण किये हैं। वलराम के नीचे बने बुद्ध अवतार का दक्षिण कर वरदमुद्रा में और वामकर बल के सम्मुख प्रदर्शित है। मानुषी अवतारों के क्रम में सबसे नीचे कल्कि अवतार का अंकन है। इनको अश्वारूढ़ मुद्रा में दक्षिण कर खड्ग धारण किये और वामकर में रास पकड़े हुए प्रदर्शित है। फलक पर प्रदर्शित देवता के दोनो पार्श्व में मालाधारी परिचारकों का अंकन उड़ते हुए जिसमें दक्षिण पार्श्व की आकृति फलक के खण्डित होने से दृष्य नही हैं फलक को चतुर्दिक वेल तथ पद्म–पुष्प से अलंकृत किया गया हैं। देवता के वाम स्कन्ध से नीचे तक प्रसारित पारदर्शक वस्त्र का ज्ञान उनके चुन्नटों के माध्यम से होता है। देवता के पीछे अलंकृत प्रभामण्डल का मात्र वाम भाग ही अवशिष्ट रूप से चित्रित है। (पी–8/31)

विश्णु :

प्राप्ति स्थल – रूद्रपुर देवरिया

आकार – 134.5 ग 63.5 सेमी0

पदार्थ – काला प्रस्तर

तिथि – 12वीं शताब्दी ई0

प्रस्तुत मूर्ति को चुर्भुजी विष्णु को समभंग स्थानक मुद्रा में निर्मित किया गया है। देवता के समाान्य दक्षिण कर में चक्र तथा ऊपरि–दक्षिण कर में दण्ड प्रदर्शित है। वाम सामान्य कर में शंख तथा उपरि वाम कर में नालयुक्त पद्म धारण किये हैं। विष्णु किरीट, कर्ण कुण्डल, हार, यज्ञोपवीत, विशाल–वनमाला, केयूर, कंकण तथा करधनी धारण किये परिलक्षित होते है। देवता के दोनो समान्य करों के समीप नालिका युक्त पद्म का अंकन किया गया है। देवता के वाम पार्श्व में वीणा वादिनी सरस्वती तथा दक्षिण पार्श्व में पद्धारिणी लक्ष्मी का अंकन त्रिभंग मुद्रा में सभी वस्त्राभूषणों से अलंकृत हुआ है। लक्ष्मी के पर्श्व में शंख पुरूष तथा सरस्वती के पार्श्व में चक्र पुरूष का अंकन हुआ। जिनका वाम कर

कट्यावलम्बित तथा दक्षिण कर में क्रमशः शंख और चक्र धारण किये हुए बनाया गया है। देवता के ऊपर दोनो पार्श्वों में मालाधारी उड़ते हुए परिचारिकाओं का अंकन किया गया है। नीचे पीठिका पर वाम पद की ओर नमस्कार मुद्रा में गरूड़ का अंकन तथा दक्षिण और अंजलि मुद्रा में सेवकों का अंकन किया गया है। सम्पूर्ण फलक को अत्यन्त अलंकृत वनाया गया है। (पीएल–9/32)

विश्णु दषावतार :

भीटी तिवारी (पीपीगंज), गोरखपुर 70 ग 36 सेमी, काला प्रस्तर 12वीं शताब्दी ई0।

उक्त प्रतिमा में विष्णु को चतुर्भुजी और स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है, प्रतिमा में देवता दोहरे पद्मपीठ पर स्थानक मुद्रा में किरीट, कुण्डल, एकावली, हार, यज्ञोपवीत, भुजबन्ध, कंकण, करधनी तथा नूपुर धारण किये हुए है। लम्बी वनमाला जानु तक प्रसारित है। देवता का साधारण प्रभा मण्डल से जिसके शीर्ष भाग पर छत्र के समान निकला हुआ भाग है प्रदर्शित किया गया है। अतिरक्त दक्षिण भुजा मे गदा तथा सामान्य दक्षिण भुजा वरद् मुद्रा में प्रदर्शित है। वाम अतिरक्त ऊपर उठी भुजा में चक्र हैं। सामान्य वाम भुजा नीचे की ओर निर्मित है। जिसमें पद्म दिखाया गया है। दाहिनी ओर चरणों पार्श्व में पद्मधारी पुरूषाकृति और उसके सम्मुख अंजलि मुद्रा में पुरूषाकृति है। वांयी ओर भी इसी प्रकार दो आकृतियॉ दिखायी गयी है। देवता के दोनो पार्श्वों में दशावतारों का अंकन किया गया है दक्षिण ओर नीचे से ऊपर की ओर बुद्ध, राम, परशुराम वराह मत्स्य है तथा बायीं ओर ऊपर से नीचे की ओर नृसिंह, वामन, बलराम और कल्कि की आकृतियॉ बनायी गयी है। (फलक – 10/33)

वराह मूर्ति, वाराणसी :

उपरोक्त वराहअवतार मूर्ति में वराह की भॉति मुख तथा शेष शरीर मानव की भॉति निर्मित है, पृथ्वी देवी का अंकन दक्षिण कर से वराह को पकड़े हुए किया गया है। पृथ्वी सुन्दर नारी के रूप में चित्रित है, जो कर्ण कुण्डल, मुकुट, सुन्दर केश विन्यास ग्रैवेयक,

केयूर तथा कड़ा धारण की है। ये विशाल वक्ष, पीन कटि तथा भारी नितम्बों संयुक्त निर्मित है। देवी का वाया हाथ खण्डित है। देवी को वराह भगवान की ओर प्रसन्नता से देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि देवी वराह के वायें भुजा के अरत्नी (केहुनी) पर विराजमान हैं। चतुर्भुजी वराह का दक्षिण कर कट्यावलम्वित है। जिसमें पद्म पुष्प लिए हुए है। दूसरे दक्षिण हस्त में भी कोई आयुध धारण किये हैं। बांया पद घुटने से मुड़ा हुआ है। जो सम्भवतः शेषनाग पर रखे हुए है। दक्षिण पद कुछ खण्डित सम्भवतः कच्छप पर रखा हुआ है वायें ओर चित्रित पुरूष समुद्र का राजा प्रतीत होता है। दक्षिण ओर अंकित नारी सम्भवतः समुद्र की रानी के रूप में अंकित है। ऊपर देव मण्डल की आकृतियॉ निर्मित है। अर्थात सम्भावित है कि मध्य में कमलासन ब्रह्मा के वाम पार्श्व में गरूड़ासन विष्णु तथा दक्षिण ओर नन्दी पर आसीन शिव की आकृति अंकित है। वराह को देवी पृथ्वी की ओर ध्यान से देखते हुए बनया गया है, वराह के वांये पद के नीचे की दो आकृतियॉ अंजलि मुद्रा में मालाधारी परिचारिकायें उड़ती हुई निर्मित है। मूर्ति में स्थित सभी आकृतियॉ सुगठित देह यष्टि से पूर्ण है। (फलक 11/30)

एकमुख लिंगः– सारनाथ, वाराणसी, 61 सेमी0, प्रस्तर, नवीं–दसवीं शताब्दी ई0।

प्रस्तुत एकमुख लिंग मूर्ति में लिंग के सम्मुख शिव मुखाकृति निर्मित है। इनके सिर पर एक ओर जुटाजूट बने हैं। यह मुखलिंग के निचले भाग में बना है। त्रिनेत्र शिव के ऊपर का नेत्र अर्द्धोन्मीलित तथा शेष दोनो नेत्र पूर्ण रूप से खुले हुए प्रदर्शित है। नेत्र किंचित खण्डित है। ओठ पर मुस्कराहट के भाव तथा कपोल उठे हुए, कान खण्डितावस्था में है, स्मितमुखाकृति में शिव के केश जटायुक्त प्रदर्शित है। ऊपर मध्य में अर्द्धचन्द का अंकन अर्थात् जटामुकुट चन्द्रकला के समान है। धारीदार केश का जटा तीन वलय व अर्द्धचन्द्र के मध्य से निकलकर सिर के दोनो ओर लटक रहा है। इस मूर्ति में गुप्तोत्तर युगीन विशेषताएं दृष्टिगत हैं यथा ठोस और भरे हुए मुखकृति से दृष्टिगोचर होता है। लिंग जिस पीठिका में स्थापित है, वह खण्डित अवस्था में है। (फलक–6/35)

शिवमूर्तिः– खैराडीह, बलिया, 50.5 सेमी0, बलुआ प्रस्तर 8वीं शताब्दी ई0।

इसमें शिव को स्थानक मुद्रा में निर्मित किया गया है। भारी एवं ठिगनी शिव मूर्ति घुटने के पास से खण्डित है। मूर्ति में शिव को समपाद स्थानक मुद्रा में निर्मित किया गया है। मूर्ति में शिव का दाहिना हाथ वरद मुद्रा में दिखाया गया हैं। ज्ञात है कि जब हाथ कुछ नीचे लटके हों, अंगुलियॉ सीधी और नीचे की ओर हों, हथेली सामने की ओर हों, तो उस वरदमुद्रा कहा गया है। वांये हाथा में परशु का त्रिशूल धारण किये, केशराशि चोटीनुमा बनाया गया है। त्रिनेत्रधारी स्थानक शिव के ललाट पर नेत्र नासिक को नुकीला बनाया गया है। भौंहे उभरी हुई धुनषाकार ग्रेवेयक तथा कटि के नीचे वस्त्र का अंकन भी किया गया है। शिव को वलिष्ठ देहयष्टि वाला बताया गया है। मूर्ति में प्रयुक्त विशेषता शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों अंशुमद्भेदागम तथा शिल्परत्न के आधार पर निर्मित हुआ प्रतीत होता है। (फलक–7/34)

भैरव मूर्ति :– रूद्रपुर, देवरिया 41 ग 23 सेमी0, प्रस्तर 8वीं, शताब्दी ई0।

शिव के भीषण भैरव रूप से निर्मित प्रस्तुत मूर्ति में भैरव को वाहन श्वान पर विराजमान दिखाया गया है। चतुर्भुजी भैरव के अति0 दक्षिण कर में खड्ग तथा वाम कर में धनुष का अंकन है। इनके सामान्य वाम कर में कपालयुक्त दण्ड एवं दक्षिण कर में सम्भवतः पाश या गदानुमा शस्त्र का अंकन है। जो वाहन श्वान की मुखाकृति पर रखा हुआ है। भैरव कपाल युक्त हार, कंकण तथा मेखला धारण किये है देव के मस्तक पर सम्भवतः नेत्र का भी अंकन रहा होगा जो घिसने के कारण दिखाई नहीं दे रहा है, सिर पर मुकुट धारण किये हैं, जिससे मध्य में वृत्ताकार अकन हैं। जो चतुर्दिक सूर्य – रश्मियों की भॉति फैली हुई।

काल भैरव :

देवरिया :– उक्त स्थल से प्राप्त शिव की यह मूर्ति अमंगल कारी रूप को प्रकट करता है। स्थानकमुद्रा में निर्मित भैरव के सिर पर मुकुट, मस्तक पर टीका, ग्रैवेयक तथा अधोवस्त्र से सुशोभित दिखाया गया है। सम्प्रति यह मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, भाटपार रानी, देवरिया में स्थित है।

उपरोक्त क्षेत्र से प्राप्त शैव–मूर्तियों के आलोचनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस काल में विवेच्य क्षेत्र में शैवोपासना विकसित रूप से नहीं होगी, जिसके कारण अलग–अलग प्रकार के शैव मूर्तियों का स्वरूप प्राप्त होता है। धार्मिक रूढ़ियो पर अनावश्यक दबाव के फलस्वरूप इस समय में कलाकारों को बिना किसी रस सौन्दर्य का ध्यान किये ही ग्रन्थों में उल्लिखित देवताओं के स्वरूपों को स्वीकार करना पड़ा। जिसके हेतु मूर्तियों वेडौल और बिना किसी रस–संचार की निर्मित होने लगी। किन्तु विवेच्य क्षेत्र में विखरे असंख्य मूतियॉ इस बात के द्योतक हैं कि तत्कालीन मूर्तिकार कलाकुशल थे तभी तो उन्होने ऐसे मूर्तियों का निर्माण किया जो अत्यन्त मनमोहक हैं। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण विवेच्य क्षेत्र की रावणानुग्रह मूर्ति।

आज भी इस युग में किसी एक सम्प्रदाय विशेष का महत्व नहीं रहा, इस नाते शैव सम्प्रदाय भी अन्य धर्मों के साथ तेजी के साथ विकासित हुआ उस काल में वाराणसी जनपद शैवों का एक गढ़ था।

वस्तुतः स्पष्ट हो जाता है कि शिव का उपरोक्त रूप शिव तथा शाक्त धर्मों के सामंजस्य का प्रतीक है, अर्द्धनारीश्वर मूर्ति के लक्षणों में जो विवेचना है, उससे ज्ञात होता है कि शिव के इस रूप की (विष्णुधर्मोत्तर[111], शिल्परत्न[112], अंशुमद् भेदागम[113], कामिकागम[114], सुप्रभेदागम्[115] तथा कारणागम इत्यादि ग्रन्थ हैं) की प्राचीनता ऋग्वैदिक उल्लेख से भी होती है। इस प्रकार शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप के अन्तर्गत शरीर में वाम भाग स्त्री–दक्षिण भाग पुरूष का होता है, वस्तुतः तांत्रिकता के प्रभाव से शैव एवं शाक्त धर्मों में जो मधुर सम्बन्ध बने रहे उससे सम्पूर्ण भारत में उमामाहेश्वर की मूर्तियों का निर्माण शुरू हुआ।

सूर्य मूर्ति :

मानव आरम्भ से ही प्रकृति का उपासक रहा है। प्रतिदिन जीवन में घटित अनिवार्य प्राकृतिक अंगों के अन्तर्गत सूर्योपासना भी मानव के द्वारा किया जाता रहा, सूर्य को रोगों का नाशक माना जाता था। सम्पूर्ण जीव, वनस्पतियों के जीवन के लिए अनिवार्य संचारक

सूर्य को वेदों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं इस देवता की उपासना प्रतीकों के माध्यम पद्म चक्र, किरणयुक्त वृत्त, मयूर स्वास्तिक (गरूढ़) से किया जाता था।

विवेच्य काल में भी इस देवता की उपासना में वृद्धि के परिणाम स्वरूप पूर्ववर्ती कालों के समान सूर्य मूर्तियों का निर्माण किया गया। इस काल में अत्यधिक संख्या में प्राप्त सूर्य मूर्तियों की प्राप्ति का एक कारण इस धर्म का राजकीय संरक्षण प्राप्त होना भी था।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में सूर्य मूर्तियॉ अत्यधिक संख्या में प्राप्त हुई हैं। यह मूर्तियॉ मुख्यतः लाल बलुआ प्रस्तर, काला बेसाल्ट प्रस्तर से निर्मित है, यह मूर्तियॉ वाराणसी, पिपराईच, तुर्कपट्टी, जोगिया, बलुआ, गंभीरपुर, देवकली (गगहा) देवकली (कौड़ीराम) आदि स्थान से प्राप्त हुई हैं। यह सभी मूतियॅ दो वर्गों में विभक्त हैं। प्रथम वर्ग में बलुआ और लाल बलुआ प्रस्तर तथ द्वितीय वर्ग में काले बेसाल्ट प्रस्तर की मूर्तियों को रखा जा सकता है। उल्लेखनीय है कि प्राप्त मूर्तियॉ स्थानक और करों में पद्म धारण किये हुए हैं उक्त क्षेत्र से प्राप्त मूर्तियों का विवरण निम्नवत है –

सूर्य मूर्तिः– पिपराइच, गोरखपुर 50 ग 26 सेमी0, काला प्रस्तर, 10वीं 11वीं शताब्दी।

द्विभुजी सूर्य देवता सप्ताश्व रथ पर स्थानक समभंग मुद्रा में स्थित है। खण्डित करों में दाहिनी भुजा में सनाल पद्म का अंकन है। देवता किरीट कुण्डल, हार, यज्ञोपवीत, मेखला से विभूषित है। देवता को अर्ध–वृत्ताकार सादे प्रभामण्डल से युक्त दिखाया गया है। देवता के चरणों के मध्य स्थानक मुद्रा में महाश्वेता का अंकन है, जिनके सम्मुख सारथी अरूण अश्वों की रधना थामे हुए प्रदर्शित है। पीठिका में पर दोनो पार्श्वों में आसनस्थ मुद्रा में उषा–प्रत्यूषा का अंकन शर–संधान करती हुई चित्रित है। यह प्रतिमा देवकुडा की प्रतिमा के समान है। किन्तु यहॉ अश्वनी कुमारों का अभाव है। सारथी अरूण वाम में अश्वों की रशना थामे हैं तथा दक्षिण कर में दण्ड (चाबुक) उठाये हुए घोड़ों को तीव्र गति से दौड़ा रहे हैं। देवता के दोनो पाश्वों में दांये वायें क्रमशः राज्ञी और निःक्षुभा चंवर लिये हुए पत्नी रूप में स्थित है। इसी क्रम में आदित्य के दक्षिण पार्श्व में पीत वर्णी पिंगल त्रिभंग मुद्रा में लेखनी एवं पत्रक लिये खड़े हैं तथा वायें पार्श्व में दण्डाधरी दण्ड त्रिभंग मुद्रा में है। देवता

के चरणों में उपानह हैं इन मूर्तियों की तुलना तुर्कपट्टी की सूर्य प्रतिमा (काले प्रस्तर) से की जा सकती है।

सूर्यः गोसाईपुर, वाराणसी 131 ग 61 सेमी0, प्रस्तर 11वीं शताब्दी ई0।

प्रस्तुत सूर्य मूर्ति समभंग, स्थानक मुद्रा में हैं द्विभुजी किरीट वृत्ताकार कुण्डल हार, एकावली मेखला, या कटि सूत्र धारण किये है। देवता के दोनो कर खण्डित है, किन्तु सनाल पद्म का दोनो पार्श्वों में अंकन यह सिद्ध करता है कि पद्म को करों में धारण किये होंगे, अधोवस्त्रधारी देवता को अलंकृत प्रभामण्डल से युक्त दिखाया गया है। देवता के चरणों के वाम पार्श्व में दण्डधारी त्रिभंग मुद्रा में और दक्षिण पार्श्व में मसिपात्र लेखनी धारण किये त्रिभंग पिंगल का अंकन है। दण्डी पिंगल के पार्श्व में चॅवर लिये राज्ञी निक्षुभा तथा अश्विनी कुमारों का अंकन भी स्थानक मुद्रा में किया गया। देवता के चरणों के मध्य भू देवी महाश्वेता का अंकन तथा दोनों पाश्वों में सम्भवतः उषा–प्रत्युषा का अंकन है, सूर्य देव के चरणों में उपानह धारण किये दिखाया गया है, सभी पार्षदों को मुकुट तथा सभी वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया गया है। सूर्य देव को सप्तरथ पीठिका पर निर्मित किया गया है। इसमें अश्व तथा सारथि अरूण का अभाव हैं। देवता के दोनों पार्श्व में नीचे से ऊपर हस्ति, सिंहव्याल आदि का अंकन हुआ है, ऊपर मालाधारी विद्याघरों का अंकन है तथा तीन मानव आकृतियों क्रमशः दक्षिण पार्श्व में ब्रह्मा, वाम में शिव का आसनस्थ मुद्रा में अंकन है तथा किरीट के कीर्तिमुख का अंकन है। ऊपर प्रस्तुत मूर्ति गाहड़वाल शैली में निर्मित प्रतीत होती है। मूर्ति में शैलीगत क्लिष्टता के अलावा अलंकरण सज्जा, तीखी भाव भंगिमा और आकर्षक केश विन्यास मुद्रा स्पष्ट परिलक्षित है। (फलक 12/37)

सूर्यः– आशापुर वाराणसी, 150 ग 51 सेमी0, प्रस्तर 8वीं शताब्दी ई0।

सूर्य को स्थानक मुद्रा में उदीच्य वेश धारण किये दण्डी एवं पिंगल के साथ बनाया गया है, इसमें द्विभुजी सूर्य को करण्ड मुकुट, हार तथा अन्य आभूषणों से युक्त बनाया गया है। इनकी मुख मुद्रा से सहज कोमलता का अभास होता है। सूर्य के दोनो ओर पार्श्व में मसिपात्र लेखनी युक्त पिंगल तथा दण्डधारी दण्डी की मूर्तियॉ भी बनी हुई है। पीठिका में

सम्भवतः अश्व का चित्रा भी किया गया हैं, चरणों में घुटने से नीचे तक दीर्घ उपानह धारण किये हैं। कटि में अव्यंग अर्थात मेंखला धारण किये हैं। सूर्य के द्विभुजी हाथ कन्धे तक ऊपर उठे हुए दिखाया गया हैं, जिसमें धारण की हुई वस्तु खण्डित हो चुकी है। सम्भवः इनके दोनो हाथों में चक्र का अंकन है। सूर्य के मस्तक के पीछे प्रभामण्डल को कान्ति तथा बिन्दु से अलंकृत दिखाया गया है, हाथ में केयूर, वलय धारण किये है। पूर्ण खुले नेत्र तथा स्मित मुख मुद्रा प्रदर्शित है नासिकाग्र किंचित खण्डित है। सूर्य की इस मूर्ति की रचना शिल्परत्न, मत्स्यपुराण, विष्णुधर्मोतर पुराण के आधार पर की गयी है।

सूर्य :– खुखन्दु गोरखपुर, 135.8 ग 63.5 सेमी0, बलुआ प्रस्तर, 10वीं शताब्दी ई0

इस प्रतिमा में द्विभुजी सूर्य देव को स्थानक समभंग मुद्रा में दिखाया गया है, देवता का दाहिना हाथ खण्डित है और वाम कर में सनाल पद्म का अंकन है। सूर्य देव के किरीट, कुण्डल हार, कौस्तुभ, मणि, वनमााल, केयूर, मेखला धारण किये अंकित है। देवता के दोनो पार्श्वों में दॉये और वायें राज्ञी निःक्षुभा का अंकन है। जिनको सूर्य की पत्नियों का स्थान प्राप्त हैं। इनके पार्श्व में दोनो ओर अश्विनी कुमारों का अंकन भी हुआ है। देवता की पत्नियों के सम्मुख त्रिभंग म्रुदा में दोनो पार्श्व में दण्डी एवं पिंगल का अंकन हुआ है। इसी प्रकार अश्विनी कुमारों के सम्मुख उषा–प्रत्यूषा का अंकन शर संधान करती हुई अंकित हैं। सूर्यदेव के चरणों में उपानह को प्रदर्शित किया गया है। देवता के चरणों के बीच आसनस्थ भू देवी महाश्वेता का अंकन भी किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सप्ताश्व रथ का अंकन है। इस प्रतिमा में अश्व तथा सारथि अरूण का अभाव है। देवता के दोनों पाश्वों में सिंहव्यालों, का अंकन। देवता के शीर्ष पर सम्भवतः सूर्य नारायण, वाम पार्श्व में शिव तथा दक्षिण पार्श्व में ब्रह्मा का अंकन है। ऊपर मालाधारी युगल आकृतियों का अंकन है। यह मूर्ति अग्निपुराण एवं भविष्यपुराण पर आधारित हैं। देवता के किरीट के दक्षिण में ब्रह्मा और वाम पार्श्व में शिव की असनस्थ मूर्ति है।

उपरोक्त मूर्तियों के अतिरिक्त क्षेत्र की बहुसंख्यक सूर्य मूर्तियॉ प्राप्त हैं, जिनका संक्षिप्त विवेचन निम्नवत है।

जोगिया (सहजनवां) 98 ग 44 सेमी0, हल्का बलुआ प्रस्तर (लाल) की एक–एक द्विभुजी स्थानक सूर्य देवता को सप्ताश्व अंकन से मुकुट, कुण्डल ग्रैवेयक मेखला और कंकण धारण किये हुए मूर्ति प्राप्त हुई है।

गगहा (गोरखपुर) के निकट देवकली नाम ग्राम स्थान से 96.5 ग 45 सेमी0 लाल प्रस्तर बलुआ, द्विभुजी देवता स्थानक मुद्रा में और सभी आभूषणों से युक्त दोनो करों में सनाल पद्म का अंकन है। देवकली से एक और सूर्य मूर्ति 90 ग 46 सेमी0 लाल बलुआ प्रस्तर की द्विभुजी सूर्य प्रतिमा प्राप्त हुई है।

गोरखपुर गगहा के समीप गंभीरपुर से 70 ग 37 सेमी0, वेसाल्ट प्रस्र की पाप शैली में निर्मित सूर्य मूर्ति प्राप्त हुई है, सभी वस्त्राभूषणों से अलंकृत निर्मित किया गया है जो सनाल पद्मधारी चित्रित हैं।

अज्ञात स्थान (गोरखपुर) एक काले वेसाल्ट प्रस्तर से निर्मित 84 ग 34 सेमी0 की एक सूर्य मूर्ति प्राप्त हुई है। जिसका काल लगभग 12वीं शताब्दी ई0 निश्चित किया जा चुका है। (रा0सं0ल0सं0 60–11) संदर्भित मूर्तियों के तुलनात्मक, विश्वलेष्णात्मक अध्ययन से सूर्य मूर्ति का जो रूप स्पष्ट होता है उसके अनुसार विवेच्य काल मे सूर्य की स्थानक–मुद्रा में मूर्तियों के निर्माण की परम्परा दिखायी दे रही है, इनको रथारूढ़, अथवा रथ के प्रतीक रूप में पीठिका पर अंकित अश्वों के साथ अंकित किया गया है। सूर्य को सम्भवतः मुकुट आभूषण अलंकृत कवच मेखला, उत्तरीय उपानह धारण किये हुए चित्रित किया गया है। इनके हाथों में मुख्यतः पद्म का अंकन किया गया है, देवता के चरणों के बीच भू–देवी महाश्वेता का तथा दोनो पार्श्व में पत्नी राज्ञी निक्षुभा तथा दण्डी–पिंगल को भी प्रदर्शित किया गया है। सामान्यतः अन्धकार का नाश करती उषा प्रत्युषा का अंकन हैं मालाधारी गन्धर्वों का अंकन समस्त मूर्तियों में परिलक्षित होती है।

उपरोक्त सूर्य मूर्तियों के अध्ययन से जो प्रमुख तथ्य समक्ष उपस्थित होते है, उसके अनुसार लगभग सम्पूर्ण पूर्वी उत्तर प्रदेश से सूर्य मूर्तियॉ प्राप्त हुईं हैं, इससे संकेतित है कि विवेच्य काल में सूर्योपासना अपने विकासित चरण में थी। आज भी प्रारम्भ में कला में

अन्तर्गत सूर्य का प्रदर्शन प्रतीक रूप में होता है, किन्तु शुंग काल में इनका मूर्त रूप प्राप्त होने लगता है, सूर्य मूर्ति में प्रयुक्त स्वरूप व उनके पार्षद का वैदिक कालीन ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। ऐसा आभासित होता है कि सूर्य की महत्ता सभी सम्प्रदायों में स्वीकार की जाती है।

सूर्य मूर्ति :– तुर्कपट्टी, 135 सेमी0 वलुआ प्रस्तर, 9वीं शताबि ई0

अतः उपरोक्त मूर्तियों के विवरण से स्पष्ट है कि विवेच्य क्षेत्र की सूर्य मूर्तियॉ द्विभुजी निर्मित है। जो मत्स्यपुराण तथा शिल्परत्न[116] के आधार पर बनी हैं। सूर्य के साथ दण्डी एवं पिंगल का अंकन भी विष्णुधर्मोत्तर[117] पुराण से साम्य रखता है। इस प्रकार अपने काया निर्माण, अनुचरो की स्थिति, पद्महास्तादेव, सारथि अरूण, दण्डी–पिंगल की स्थिति अपने आयुधों सहित, मालाधारी गन्धर्व और सम्पूर्ण सूर्य मूर्ति के अवलोकन के आधार पर उपरोक्त विशेषता की साम्यता इनको गुप्तोत्तर सूर्य मूर्ति में प्रतिष्ठित करता है।

गणेश प्रतिमा (पूर्वी उत्तर प्रदेश) :

हिन्दू पंचदेवों में गणेश विशेष प्रतिष्ठित देव हैं। सभी कार्यों तथा पूजा आदि में सर्वप्रथम गणेश की ही पूजा की जाती है। आज के समाज में इनकी महत्ता प्रकट होती है। गणेश की एकदन्त, लम्बोदर, गणपति, विनायक, सूपकर्ण, विघ्नराज तथा गजानन आदि नामों से सम्बोधित किया गया है जो उनके शारीरिक एवं चारित्रिक गुणों का विवेचन करते हैं। गणेश की प्रारम्भिक मूर्तियॉ स्वतन्त्र रूपेण नहीं वरन सप्तमातृकाओं एवं नवग्रहों के साथ विघ्ननाशक रूप से प्राप्त होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम गणेश की मूर्ति बनाने हेतु विधान वृहत्संहिता में प्राप्त होता है। वस्तुतः पांचवीं एवं छठी शताब्दी के बाद गणपति पूजा भारतीय समाज में आरम्भ हुयी थी। गणेश मूर्ति का प्राचीनतम लक्षण उनका गणमुख, एकदन्त, तथा लम्बोदर होना ही ज्ञात होता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रमुख स्थलों से प्राप्त मूर्तियों का विवरण निम्न रूप से प्राप्त होता है।

गणेश मूर्ति :

स्थन – दोहरीघाट, आजमगढ़

आकार – 15 ग 10 सेमी0

पदार्थ – प्रस्तर

तिथि – 12वीं शताब्दी ई0

प्रस्तुत मूर्ति में गणेश देव को गजमुख, एकदन्त, लम्बोदर रूप में निर्मित किया गया हैं। इनका कर्ण सूर्पवत प्रदर्शित किया गया हैं। मूर्ति में गणेश को चतुर्भुजी रूप में प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त दक्षिण कर में परशुधारण किये हैं और दक्षिण सामान्य कर किसी वस्तु (मोदक पात्र) के साथ दाहिने जानु के ऊपर स्थित हैं वाम अतिरिक्त कर में खेटक तथा सामान्य वाम कर में जम्बुफल का अंकन है। आसनस्थ गणेश त्रिनेत्र, अलंकृत मुकुट सर्पाकार यज्ञोपवीत कंकड़ धारण किये है। नीचे पीठिका में वाहन मूषक बना हुआ हैं सूंड़ नीचे लटकता हुआ दाहिने ओर मुड़ा हुआ सम्भवतः आम्रफल का भक्षण करते प्रदर्शित है।

नृत्यरत गणेशः– सपही, उजासाथ, 83 ग 91 सेमी0, प्रस्तर 12–13वीं शताब्दी।

प्रस्तुत मूर्ति में गणेश को नृत्यरत मुद्रा में निर्मित किया गया है।

गणेश मूर्ति :– वाराणसी, 49 ग 35 सेमी0, प्रस्तर, 9वीं शताब्दी ई0।

देव को द्विनेत्र, लम्बोदर, गजभुज, कुठारधारी, सूपवर्त, कर्ण से युक्त प्रदर्शित किया गया है। देवता को किरीट धारण किये प्रदर्शित किया गया है। शीर्ष भाग के पीछे प्रभामण्डल का भी अंकन हुआ है, इनके विशाल तुण्ड नीचे की ओर है जो वॉयें मुड़ा हुआ प्रदर्शित है। पोडशभुजी के आज भी अधिकांश भुजाएं टुटी हुई हैं किन्तु दाहिने एक कर में दन्त का अंकन है और बांये उपरि एक कर में परशु तथा सामान्य कर में कमण्डलु का अंकन है, इस मूर्ति का विशिष्ट लक्षण यह है कि इसमें गणेश देव को पूँछ युक्त बनाया गया है। गणेश के षोडशभुजी इस रूप की साम्यता इनकी भुजाओं के आधार पर वीर विघ्नेश मूर्ति से की जा सकती है। (फलक सं0 – 15/37)

नृत्य गणेश :– देवकली, गगा, 40 ग 22 सेमी0, बलुआ प्रस्तर 11वीं शताब्दी ई0।

प्रस्तुत मूर्ति में नृत्य करते हुए गणपति का अंकन किया है। गणेश के चारो हाथ खण्डित है। मुखाकृति घिसा होने के कारण बहुत स्पष्ट नही है। घटोदर गणपति की शुण्ड वाम पार्श्व की ओर मुड़ी है। देवता के सिर के ठीक ऊपर क्षैतिज सर्प का अंकन इस प्रकार से किया गया है, जैसे वह छत्र हो। अत्यधिक घिसी होने के कारण देवता द्वारा धारण किये गये आभूषण एवं यज्ञोपवीत स्पष्ट नहीं है। मूर्ति के दक्षिण पार्श्व में सिर विहीन एक आकृति स्पष्ट है तथा वाम भाग में घुटने के नीचे एक आसनस्थ आकृति है। गणेश का वाहन मूषक देवता के वामपद के पार्श्व में प्रदर्शित है, इसके अति0 अन्य लक्षणों का अभाव है। मूर्ति के उदर से ऊपर का भाग खण्डित है। प्रस्तुत मूर्ति वर्तमान में उक्त ग्राम में स्थित टीले पर नवनिर्मित मंदिर में रखी है। (फलक सं0 – 14/38)

गणेश मूर्ति :– आजमगढ़ 112 ग 37.5 सेमी0, लाल बलुआ प्रस्तर, 8वीं शता0 ई0

प्रस्तुत मूर्ति में गणेश को गजमुख, लम्बोदर, कुठारधारी निर्मित किया देवता की सूर्पवर्त कर्ण, मुकुट धारण किये हुए प्रदर्शित किया गया है। त्रिनेत्र देव का चतुर्भुजी रूप में निर्मित किया गया है। देवता के दोनो सामान्य का सम्मुख शुण्ड का प्रदर्शन किया गया है। देवता के दोनों सामान्य का सम्मुख प्रदर्शित है। इनकी दक्षिण अतिरिक्त भुजा ऊपर उठी हुई तथा कर में परशु धारण किये है तथा सामान्य दाहिने कर में श्रीफल लिये हैं, जिसे अपने शुण्ड द्वारा ग्रहण करने हेतु पकड़े हैं। वाम अतिरिक्त कर में पद्म धारण किये हैं। इस कर की स्थिति दक्षिण अतिरिक्त कर के समान है। वाम सामान्य कर में किसी अस्पष्ट वस्तु आ अंकन है। आसन मुद्रा में पीठिका पर अवस्थित गजानन का वाम पद घुटने से मुड़ा है, दक्षिण पद सीधा रण पर घुटने से मोड़कर सम्मुख रखे हैं। देवता को कुण्डल, कंकण, हार, यज्ञोपवीत, नुपुर के अंकन से सुशोभित किया गया है।

उपरोक्त मूर्ति वृहत्संहिता, विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा मत्स्यपुराण आधारित है। उपरोक्त मूर्ति आसनमुद्रा में आसीन बनाया गया है, यह मूर्ति गणेश देव के तरूण गणपति देवे रूप को व्यक्त करते हैं। विवेच्य काल से गणेश–पूजा की लोक प्रियता के परिणाम

स्वरूप अनेक नवीन प्रतिमान जुड़ गये। जिससे इनकी विविध रूपों में मूर्तियॉ बनायी जाने लगी। इनकी सर्वोच्चता को स्वीकार करते हुए 'गाणपत्य सम्प्रदाय' का विकास इसी समय से परिलक्षित होने लगता है।[118] पूर्वी उत्तर प्रदेश में गणेश के विविध रूपों में नृत्य–गणपतिको पर्याप्त लोक प्रियता मिली। ऐसा प्रतीत होता है कि नृत्य गणपति का वास्तविक विकास प्रतिहार काल में हुआ। राज्य संग्रहालय लखनऊ में इस काल की लगभग सात मूर्तियॉ प्रदर्शित हैं।[119]

उपरोक्त मूर्ति का अंकन वृहत्संहिता[120], अमरकोश[121], मत्स्यपुराण[122] तथा रूपमण्डन[123] के आधार पर हुआ हैं समान्यतः यतुर्भुजी, षड्भुजी अष्टभूजी मूर्ति का निर्माण किया गया है। विवेच्य क्षेत्र की उपरोक्त मूर्ति की तुलना कनौज से प्राप्त नवीं शती0 ई0 से की जा सकती है। जो सम्प्रति भारत कला भवन, वाराणसी (क्रमांक 20074) की निधि है, किन्तु नाग–यज्ञोपवीत और गणेश की लयात्मक नृत्यरत मुद्रा में बाएं पैर को आगे बढ़ा और कुछ उठा होना अत्यन्त स्वभाविक दिखायी देता है। नृत्य–अवसर के अनुरूप वेणु और मृदंग वादकों की पार्श्ववर्ती आकृतियॉ नृत्य की लयात्मकता में और भी वृद्धि करती हैं। सभी अलंकरणों से इनको युक्त दिखाया गया है। शारीरिक रचना में स्वाभाविक भाव–भंगिमा के स्थान पर गुप्त शैली की मूर्तियों की सहजता, स्वाभाविकता देखी जा सकती है, मूर्ति के निरूपण में विष्णु धर्मोत्तर पुराण के लक्षणों का पालन किया गया है।

उपरोक्त मूर्तियों के सम्यक विवेचन से स्पष्ट होता है कि गुप्तोतर युग में कुछ दुर्लभ मूर्तियॉ विवेच्य क्षेत्र से प्राप्त हुयी है। जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि इस युग में गणपत्य सम्प्रदाय अपने चरमोत्कर्ष पर थी। एक नवीन सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित गणेश देव को मूर्तिकार द्वारा सभी वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया गया और आसन तथा नृत्यरत मुद्रा में निर्मित किया गया है। वस्तुतः इनका यह रूप तत्कालीन समय से प्रतिष्ठापित थी। इसलिए मूर्तिकार द्वारा इस प्रकार की मूर्तियों के निर्माण में कुशलता प्राप्त कर ली गयी थी।

कार्तिकेय मूर्ति :

भारतीय साहित्य कला एवं मुद्राओं में कार्तिकेय का महत्वपूर्ण स्थान है, जिसका विवेचन डॉ0 ठाकुर ने सम्यकरूपेण किया है[124] आज भी इनको प्रमुख रूप से पंचदेवों में स्थान प्राप्त नहीं हो सका किन्तु इनकी उपासना पूरे भारत में लोकप्रिय रही है, इनके प्रसिद्ध इनके विभिन्न नामों से ज्ञात होती है, स्कन्द कुमार, कार्तिकेय, महासेन, विशाख, सेनापति, षडमुख, षडानन, गंगासुत, पार्वती–सुत, शक्तिधार–सुमित्र आदि है।[125] प्रो0 बनर्जी के अनुसार – चूंकि स्कन्द में अनेक देव समाहित हैं, इस नाते स्कन्द के अनेक नाम एवं उनकी उत्पत्ति की अनेक कथाएं प्राप्त होती हैं।[126] छान्दोग्य उपनिषद में स्कन्द को सनत्कुमार से अभिन्न कहा गया है।[127]

वस्तुतः उत्तर वैदिक काल तक स्कन्द कार्तिकेय एक लोकप्रिय देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं।[128]

कालान्तर में कार्तिकेय की मूर्ति निर्माण में शास्त्रीय नियमों का पालन पूरी तरह किया है। प्राचीनतम् प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थ वृहत्संहिता में स्कन्द को मयूरासीन–द्विभुज, शक्तिधर एवं वालरूप में बनाने का विधा किया गया है।[129] डॉ0 गोपीनाथ राव ने कुमारतंत्र नामक ग्रन्थ से 16 प्रकार की स्कन्द मूर्तियों का उल्लेख किया है।[130]

कार्तिकेय मूर्ति (गुप्तयुगीन) :– वाराणसी, 39 ग 59 से0, प्रस्तर चतुर्थ शताब्दी ई0

इस मूर्ति स्कन्द मयूरासीन तथा दण्ड या परशुधारी है। स्कन्द के वॉये कर में शक्ति है तथा दाहिना कर खण्डित है। इस कर में सम्भवतः मातुलुंग फल रहा हो अथवा यह अभय मुद्रा में हो गया, मुर्गा पक्षी के साथ निर्मित हो, जैसा कि एकमुख तथा द्विभुजी मूर्तियों में दिखती है। मयूर के पंख पूर्ण मण्डलाकार में फैले हैं, अर्थात उनके पंख से ही देवता का प्रभामण्डल बना है। कार्तिकेय इन पंख फैलाये मयूर पर आसनस्थ है। निश्चय ही यह मूर्ति गुप्त कलाकारों की अनुपम कृति है। सुगठित शरीर में कार्तिकेय को अर्द्धोन्मीलित नेत्र में दिखाया गया है। नुकीला नासिकाग्र प्रसन्नाचित मुखाकृति, कानों में बड़े–बड़े गोल कुण्डल तथा ग्रीवा में चिपका हुआ चौड़ा हार चन्द्रहार के समान सुशोभित हैं। हाथ में कड़ा पहने

है। दाहिने भुजा में मयूर चन्द्रहार के सामन सुशोभित हैं। हाथ में कड़ा पहने है। दाहिने भुजा में केयूर परिलक्षित है। मूर्ति में घुटने तक लहरदार वस्त्र पहने हैं। (फलक 11/22)

कार्तिकेय के प्रतिमा लक्षणों का प्राचीनतम उल्लेख वृहत्संहिता[131] तथा विष्णुधर्मोत्तर[132] पुराण में मिलता है। इसमें विष्णुधर्मोत्तर पुराण उनके षडानन रूप को दर्शाता हैं। इनकी शिखण्डक, केशसज्जा, रक्तवर्णीय वस्त्र, मयूरवाहन, दक्षिण करों में कुक्कुट तथा घंटा वाम में वैजन्ती, पताका तथा भाले का निर्देश किया गया है। उक्त प्रतिमा काले प्रस्तर की होने के कारण अवश्य ही पूर्वी क्षेत्र से लायी गयी होगी।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि गुप्तयुग में कार्तिकेय की लोकप्रियता सर्वव्यापी हो गयी थी, इस नाते कलाकारों द्वारा सम्पूर्ण भारत में इनकी मूर्तियों का निर्माण किया गया। आज भी दक्षिण भारत में इनको विशेष लोकप्रियता मिली और यह ब्रह्मव्यदेव नाम से ख्यात हुए किन्तु विवेच्य क्षेत्र से भी अनेक एकमुख, द्विभुजी, मयूरवाहन सहित मूर्तियॉ प्राप्त हुई हैं, जो इनके व्यापकता को दर्शाते हैं। पूर्वी उत्तर–प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में देवी मूर्तियॉ प्रचुर संख्या में निर्मित हुई। इनमें प्रमुख मूतियॉ सरस्वती, महिषासुर मर्दिनी, वैष्णवी, वाराही, चक्रेश्वरी, मातृदेवी आदि उपलब्ध हैं। इस काल को आज भी पार्वती की मूर्ति उपलब्ध नहीं हो सकी है, किन्तु इनकी पंचाग्नि तप करते हुए अधिक रूपांकित हुआ है। उपरोक्त सप्तमातृकाओं की प्रायः स्वतंत्र मूर्तियॉ प्राप्त होती हैं। विवेच्य क्षेत्र से प्राप्त कतिपय देवी मूर्तियों का विवरण अनुवर्ती पंक्तियों में दृष्टव्य है।

दुर्गा महिषासुर मर्दिनीः– गोरखपुर 50 ग 24 सेमी0, ग्रेनाइट प्रस्तर, 11वीं शताब्दी ई0।

उक्त प्रतिमा गोरखपुर जनपद से प्राप्त हुई है। जिसका स्थल अज्ञात है। इसमें देवी को अष्टभुजी और प्रत्यालीढ़ मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है, देवी जटामुकुट, कर्णाभूषण, ग्रीवा मे हार, करों में चूड़ियॉ, सामान्य दोनो करों में भुजबन्ध, नुपूर और अधोवस्त्र धारण की हैं। देवी के उन्नत वक्ष कंचुकी से आवृत्त है। पीठिका पर अंकित महिष की ग्रीवा लटकी हुई है तथा उसके चारों पैर ऊपर की ओर प्रदर्शित हैं। देवी अपने दक्षिण चरण से महिष

के आगे के दोनो पैर को अपने वामहस्त से पकड़ रखा है। महिष के पृष्ठांग पर सिंह आक्रमण करते हुए प्रदर्शित हैं। देवी के सामान्य दोनों करों में त्रिशुल है, जिसे देवी महिष के उदर में प्रविष्ट करती हुई प्रदर्शित हैं अन्य दांये करों में एक तूणीर से बाण निकालती हुई और दो क्रमशः चक्र और खड्ग से युक्त प्रदर्शित है। वायें करों में से दो शेष क्रमशः खेटक और चाप से युक्त हैं। शीर्ष भाग पर देवी के मस्तक के पीछे युग्त मालाधारी विद्याघरों का अंकन हैं। महिष के उदर में चक्र और वाण विद्या हैं।(फलक 43/85)

महिषासुर मर्दिनी :– वाराणसी, 62.5 ग 41.5 सेमी0, वलुआ प्रस्तर, 12वीं शताब्दी ई0।

उक्त मूर्ति में देवी को अष्टभुजी एवं प्रत्यालीढ़ मुद्रा में प्रदर्शित किया है। देवी को अलंकृत मुकुट, कर्ण कुण्डल, हार, एकावली, केयूर, कंकण अलंकृत मेखला नुपुर और अधोवस्त्र धारण किये प्रदर्शित किया गया है। देवी के उन्नत वक्ष कचुकी से आवृत्त है। पीठिका पर अदित महिष का सिर का कटा हुआ नीच पड़ा है ओर ग्रीवा के पास से वास्तविक असुर को निकलते हुए प्रदर्शित किया गया है। जिसके केश को देवी सामान्य दायें कर से पकड़े हुए प्रदर्शित है। देवी वायां पद पीठिका पर तथा दक्षिण चरण महर्षि के पीठ पर रखी हुई है। महिष के पृष्ठांग पर सिंह आक्रमण करता हुआ प्रदर्शित है। देवी वाम अन्य अतिरिक्त करों में क्रमशः ऊपर से नीचे ढाल, घण्टा खेटक को धारण की हुई है। देवी के अतिरिक्त तीनों दक्षिण कर खण्डित हो चुके हैं देवी के ऊपर दक्षिण पार्श्व में अनुचर रूप में नारी आकृति उत्कीर्ण है। देवी के मस्तक के पीछे साधारण प्रभामण्डल का अंकन है। (फलक 43/86)

मातृदेवीः– जौनपुर, 42 ग 54.5 मी0, वलुआ प्रस्तर, 10वीं शताब्दी ई0

प्रस्तुत मूर्ति में मातृदेवी को आसनस्थ मुद्रा में दिखाया गया है, मूर्ति में अनेक स्थलों से खण्डित हो चुकी है, किन्तु अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि देवी ललितासन मुद्रा में मोढ़े पर विराजमान हैं, इस मुद्रा में देवी का वाम पद घुटने से मुड़ा हुआ है और दाहिना पद नीचे लटकता प्रदर्शित हैं। मातृ देवी को कुण्डल, हार, दोहरी, एकावली, मेखला से

युक्त चित्रित किया गया है। इसमें देवी को उन्नत वक्ष क्षीण कटि से युक्त प्रदर्शित किया गया है, ऊपर देवी के दोनो पाश्वों में मालाधारी गन्धर्वों का अंकन है। मूर्ति में देवी के वाम जनु के नीचे पशुआकृति प्रदर्शित है। (फलक–46/92)।

बस्ती से 38 ग 25 सेमी0 की एक मृण्मय मकरवाहिनी गंगा की मूर्ति प्राप्त हुई। देवी के कटि प्रदेश के ऊपर का भाग खण्डित। मकर पर स्थानक मुद्रा में देवी का अंकन। इनका दाहिना पैर खण्डित। वाया मकर के अगभाग पर, देवी चुन्नटदार साड़ी, कटि में करधनी धारण किये हुए है। मकर मुख्य ऊपर की ओर खुला है। इसका निचला भाग खण्डित हो गया है। वर्तमान में यह मूर्ति राहुल सांस्कृत्यायन संग्रहालय गोरखपुर में स्थित है।

सरस्वतीः– गोरखपुर, 95 सेमी0, क्लोराइड प्रस्तर, 11वीं शताब्दी ई0

प्रस्तुत मूर्ति किसी विष्णु प्रतिमाखण्डित अंश है, मूर्ति में द्विभुजी देवी का वाम हस्त खण्डित है और दक्षिण कर से देवी वीणा के तारों को झंकृत करती हुई प्रदर्शित हैं, देवी के करों में वीणा प्रदर्शित है। वीणा दण्ड का निचला भाग एकमुखी मकरमुखी है तथा ऊपर का भाग खण्डित है। सरस्वती उत्तरीय धारण किये हुए है, मुकुट, कर्णाभूषण, हार, केयूर, अलंकृत मेखला से युक्त दिखाया गया है। देवी द्वारा धारण किये समस्त आभूषण बड़ी ही सुन्दरता से उकेरे गये है। ((रा0सं0ल0सं0 पंच0– 150)

कटि से घुटने तक चुन्नटदार धोती धारण किये हुए देवी को विवृत्त मुख, शंक्वाकार नासिका, कमानीदार भौहों द्वारा निर्मित किया गया है। उभरे नेत्रों की पुतलियों पर कला लेप लगाया गया है। चौड़ी मस्त से युक्त देवी की मुखाकृति पर वात्सल्यता के भाव को प्रदर्शित करने में मूर्तिकार को सफलता मिली है।

आसनस्थ मातृदेवी :– कुशीनगर, 18 ग 12 सेमी0, मृण्य, प्रथम शताब्दी

आसन्थ मातृका :– कुशीनगर, 50 ग 30 सेमी0, मृण्य, प्रथम शताब्दी

गजलक्ष्मी :– बस्ती, 13.5 ग 8 सेमी0, भृव्मय् द्वितीय शताब्दी

मृण्य् फलक पर उत्कीर्ण गजलक्ष्मी के सिर पर कलगी युक्त पगड़ी बंधी हैं। कुण्डल एकावली तथा हार से अलंकृत देवी के दोनों करों की कट्यावलम्बित मुद्रा में निर्मित किया गया है, कटि में मेखला धारण किये प्रदर्शित देवी के सिर के पास, पुष्प के ऊपर दोनों ओर सूंड़ उठाये हुए पुष्प वर्षा करते गजों का अंकन है। इसके साथ ही दोनो पार्श्व में कटि के पास पुष्पपात बने हुए हैं। कटि में धोती को वस्त्र रूप में धारण की हुई है। गजलक्ष्मी के उपरोक्त रूप की पुष्टि रामायण से भी हो जाती है।

हड़प्पा युगीन बहुसंख्यक नारी मृण्मूर्तियॉ प्राप्त हुई, जिनसे मातृदेवी की सहज कल्पना की जा सकती है।[131] ऋग्वेद में मातृरूप के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। जिनमें अदिति सर्वाधिक लोकप्रिय थी।[132] पौराणिक युग में जगदम्बा या जन्मदाता के रूप में यही रूप विकसित हुआ।

डॉ0 अग्रवाल महोदय ने नारी मूर्ति की पृथ्वी माता की संज्ञा दी है।[133]

गजलक्ष्मीः– बस्ती, 35 ग 31 सेमी0, प्रस्तर, पॉचवीं शताब्दी ई0

मूर्ति की दोनो भुजाएं एवं वक्ष के नीचे का समस्त भाग खण्डित है। मस्तक पर टीका, कानों में कुण्डल एवं गले में हार धारण किये हुए हैं। शीर्ष के ऊपर दोनो किनारों पर गज सूड़ों द्वारा जल उड़ेलते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं अर्थात् उनके पीछे दो सुन्दर हाथी अपने सूड़ों में जल भरकर नीचे की ओर छिड़कते हुए प्रदर्शित किये जाते हैं। इसका तादात्म्य विष्णु धर्मोत्तर पुराण के उल्लेख के अनुसार किया गया है।[134]

सरस्वती मूर्ति :– 63.5 ग 34 सेमी0, काला ग्रेनाइड, प्रस्तर, 12वीं शताब्दी ई0।

प्रस्तुत मूर्ति में देवी ललितासन–मुद्रा में त्रिरथ पीठिका पर विराजमान हैं। देवी का उच्चासन पद्म से अलंकृत है। देवी शारदा के सिर पर अलंकृत मुकट कानों में कुण्डल, ग्रीवा में हार एवं एकावली भुजबन्ध, चूड़ियॉ, अंगूठी, कटि में अलंकृत मेखला, पैरो में छड़नुमा कड़ा और नुपुर से सुशोभित देवी को उन्नत उरोज के साथ प्रदर्शित किया गया हैं। चतुर्भुजी देवी के करों में मकरमुखी वीणा सुशोभित है, जिसका मध्यवर्ती भाग खण्डित हैं

देवी का दक्षिण सामान्य कर वीणा के तारों को स्पर्श करती हुई प्रदर्शित है और दक्षिण अतिरिक्त कर खंडित हो चुका हैं सामान्य वाम हस्त की अंगुलियों से वह एक लघु दण्डाकार वस्तु (गिटार बजाने में प्रयुक्त) लिये हुए हैं, जो वीणा के तार पर आड़ी रखी हुई है। वीणा में प्रयुक्त वस्तु का प्रयोग क्षेत्र की इसी मूर्ति में दृष्टिगत होती है। अन्यत्र वीणा के साथ यह नहीं परिलक्षित होती है। देवी का अतिरिक्त वाम हस्त घुटने पर अवलम्बित है तथा इसमें पुस्तक है। देवी को अलंकृत प्रभामण्डल से युक्त तथा पीठिका पर नीचे हंस प्रदर्शित किया गया है। हंस के पार्श्व में हाथ जोड़े मुद्रा में दो उपासि काये बैठी हैं। सम्भवतः देवी के खण्डित दक्षिण कर में अक्षमाला रही हो। (रा0सं0सं0चय0–23) (फलक–13/39)।

ध्यातव्य है कि मानव के जन्म के साथ ही मातृदेवी की उपासना प्रजनन देवी के रूप में होने लगा था।

सरस्वती मूर्ति :– गोरखपुर, 57 ग 18 सेमी0, प्रस्तर, आठवीं शताब्दी

प्रस्तूत मूर्ति द्विभुजी रूप में ललितासन मुद्रा में बड़ी है। देवी को हार कुण्डल, वलय नुपुर मेखलादि सभी आभूषणों से युक्त वस्त्र धारण किये हुए अंकित किया गया है। केश – विन्यास उठी हुई खण्डों में विभक्त करके निर्मित की गयी है। देवी के करों में वीणा वांये भुजा से दाये जानु तक धारण किये दर्शाया गया है। देवी के दोनों कर वीणा–वादन की मुद्रा में प्रदर्शित है। सौम्य मुखाकृति, उन्नत, वक्षस्थल, क्षीणकटि से युक्त देवी एक पीठिका पर स्थानक प्रदर्शित है। सम्पूर्ण मूर्ति एक फलक पर उत्कीर्ण है। (फलक–30/60)

भारतीय विचारधारा के अन्तर्गत सरस्वती को विद्या एवं ललितकलाओं की देवी के रूप में जाना जाता है। ऋग्वेद में सरस्वती का उल्लेख एक नदी के रूप में प्राप्त होता है।[135] पुनः वाक् देवी के रूप में साहित्य में इनका उल्लेख मिलने लगता है। महाभारत में देवी को श्वेतवर्णी, श्वेत कमलासीन अक्षमाला पुस्तक तथा वीणा लिये प्रदर्शित किये जाने का उल्लेख मिला है।[136] पूर्वी उत्तर प्रदेश में विशेष रूप से माघ मास में वसंत पंचमी के दिन देवी की मृत्तिका से निर्मित प्रतिमा को समस्त वस्त्राभूषण से अलंकृत कर पूजन करने

की परम्परा रही है। भारतीय प्रतिमा शास्त्र में सरस्वती को अनेक रूपों में प्रदर्शित किया गया हैं। अग्नि पुराण में देवी के दक्षिण एवं वाम करों में अक्षमाला और पुस्तक होने का उल्लेख है किन्तु सामने की दोनो भुजाओं को वीणा बजाते हुए प्रदर्शित करने का विधान है।[137] विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार स्थानक सरस्वती को समभंग मुद्रा में श्वेत पद्म पर स्थित होना चाहिए, उन्ही दोनो भुजाओं में पुस्तक और अक्षमाला तथा वाम हस्त में कमण्डल एवं वीणा होनी चाहिए।[138]

मूर्ति कला की दृष्टि से सरस्वती का प्राचीनतम प्रतिमा भरहुत वेदिका स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। जिसमें देवी विकासित पद्म पर वीणा बजाती स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित हैं, हिन्दू देवी सरस्वती की यह प्रारम्भिक मूर्ति स्वीकार की गयी है।[139]

विवेच्य क्षेत्र से प्राप्त उपरोक्त मातृदेवी मूर्तियों विश्लेषणों उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि कलाकार ने देवी मूर्तियों की मुख मुद्रा, हस्तमुद्रा, शरीर अन्वय के माध्यम से अपने विचारों एवं भावों को व्यक्त किया है। फलस्वरूप जो रूप सामने आता है, उसमें एक वात्सल्य रस से पूर्ण सृजनकर्ता रूप में मातृका, समक्ष, उत्पन्न होती है। यह वही मातृदेवी मूर्तियॉ हैं, जिन्हे वेदों में महीमाता और महानग्नी कहा गया है, इन सभी में मातृदेवी की कटि में विविध प्रकार के मेखला का अंकन हैं उन्नत वक्ष स्थल पर विविध अलंकृत हारों का प्रयोग किया गया हैं विविध केश विन्यास से सुशोभित देवी को मकराकृत कुण्डल, पत्र कुण्डल तथा वृत्ताकार कुण्डल से युक्त निर्मित किया गया है। संसाधन रूप में मुख्यतः मृदा का प्रयोग कलाकारों ने किया। निर्माण प्रविधि के अन्तर्गत मस्तक भाग को सांचे में ढाला गया है तथा शेष अंगों को चाक निर्मित अथवा डौलिया पर बनाया गया है, विविध अलंकरणों को अलग से निर्मित कर मूर्ति में चिपकाया गया है। विभिन्न मुद्रा–विन्यास में सुसज्जित देवी को लम्बोतरी नेत्र से युक्त दिखाया गया हैं जिनमें उभरी पुतलियॉ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। इनको निर्मित करने हेतु मृदा को अत्यधिक गूँथ कर पकाया गया है, जिससे यह प्रस्तर जैसा दिखता है। आंवों में भी निर्मित किये जाने वाली मूर्तियॉ प्राप्त हैं जो निर्माण–प्रविधि के कारण धुंधले रंग की दिखयी देती हैं। ऐसा आभासित

होता है कि मातृपूजन की परम्परा भारतीय संस्कृति की धरोहर रही है। इनके निर्माण में डौलिया कर ही बनाने का प्रमाण मिलता है।

भारतीय कला में देवी में लक्ष्मी की प्राचीनतम चित्रण शुंगकाल से उपलब्ध होते है।, शिल्पी ने लक्ष्मी की प्राचीनता को सिन्धु घाटी की कुछ स्त्री मूर्तियों ढूढ़ने का प्रयास किया गया है।[140]

अतः विवेच्य क्षेत्र में प्राप्त देवी (मातृ देवी गज लक्ष्मी) मूर्तियॉ से इनकी महत्ता स्पष्ट होती है। जहॉ दीपावली के पावन पर्व पर लक्ष्मी की पूजा उनकी लोक में ख्याति सिद्ध करती है, वही नवरात्र के पर्व पर मातृदेवी की उपासना लोक में प्रचलित है।

संन्दर्भ ग्रन्थ एवं पाद टिप्पणियाँ

1. अन्योन्यमिथुनाह्येते अन्यो–याश्रापिणस्तथा।
2. मार्क0पु0 46/19 मार्क0 पु0 49/17
3. कुमार सम्भवम् 2/4–6
4. वि0पु0 1/6/35–37, 45/2–9
5. स्वमायया वर्तित लोक तंत्रम श्रीमद् भा0 3/21/22

6. वैनर्जी जे0एन0–डे0दि0 आ0पृ0 475.

7. राव गो0ना0 ए0हि0आ0वा0 2 भा0 1 पृष्ठ 383

8. 12. श्रीमद् भा0 10/12/24

9. वि0 पु0 3/126–8

10. चतुर्भुजं चतुर्वक्त्रं द्विपादं चाष्ट लोचनम्। अष्ट कर्ण समायुवतं तनुश्चै कृतिस्यधा। मकरेणंलांछित पुष्पं कुण्डल वाघ कर्णयोंः।।

11. गौराश्तेन तु रौप्येन स्यन्दनेन विसर्पति। मत्स्य पु0 127/7

12. अग्रवाल वा0श0 हर्षचरित्र एक सांस्कृतिक अ0पृ0 12

13. बनर्जी, जे0एन0–डे0 हि0आ0 पृष्ठ 519

14. अग्रवाल वा0श0–ए0कै0 आ0इ0 आ0 ब्र0 कि0ए0शी0

15. म0आ0ज0आ0हि0यू0प0 सोन्वा 22 पृ0 102

16. श्रीमद् भा0 10/21/10

17. राव0गो0 वा0 ए0हि0 आ0सं0 1 भाग 1 पृ0 219

18. बनर्जी जे0एन0डे0हि0 आ0 पृ00 296

19. महा0 आदि 67/51

20. महा0शा0 339–40,42

21. महा0 अनु0 149/49

22. वसनात् सर्व भूतानां .....महा0 उद्यो0 70/3

23. राव0गो0वा0 ए0हि0 आ0 1 भाग 1 पृ0 200

24. वि0पु0 1/2/13–15

25. वि0ध0 85/2

26. वि0ध0 85/3–4

27. वि0पु0 6/7/188–89

28. प्रलम्बाष्टभुजं विष्णुमधवापि चतुर्भुजम्। वि0 पृ0 6/7/82

29- development of Hindu Inconography. PP.261. 406, PL. XXIV, Kramrisch St., Journal of the Indian Society of Oriental Art, Vol. I, PP. 99-100, PLXXX. The Agrawal. U., Khajuraho Sculptures and their Significance P. 44, Fig 23

30- Rao. Bajapi K.D., Two Rare Images of Vishnu, from mathura, Journal of the U.P. Historical Society, Vol. II, Part – i-ii, 1954

31. ऋग्वेद 6/4/10, 4/12/16, 9/13/3

32. बनर्जी, जे0एन0–डे0हि0 आ0पृ0 464.466

33. वेवर, इण्डिशे स्टडिन कं0 2 प्र0 302

34. हॉडर एम0 वेस्टप दृ प्रिमिटीव सि0 ए0इ0इ0फे0 वर0पृ0 26

35. राव गो0 ना0 ए0 हि0 आ0 वा0 1 भाग 1 पृ0 74–75

36.

37. Dr.R.G. भण्डाकर द्वारा लिखित 'Vaishnauism Savism and other minor religion sects 'अनुवाद 340 माहेश्वरी द्वारा, पृ0 132

38. वहीं0 पृ0 45

39. रा0गो0ना0ए0 हि0 आ0 बा0 1 भाग 2 पृ0 278

40. वि0ध0 74/5

41. श्रीमद भा0 4/4/18–23

42. ईशान शिव पद्धति पृ0 148, राव0 गो0 ना0ए0 आ0वा0 1 भा0 2 पृष्ठ 279

43. ईशान शिव गुरूदेव पद्धति अ0 1 पृ0 149

44. मयमत 33/42

45. राव, गो0ना0ए0हि0 आ0बा0 2 भाग 1 पृष्ठ 74

46. वहीं पृ0 78

47. राव, गो0ना0 ए0हि0आ0वा0 2 भाग 2 परिशिष्ट पृ0 280

48. डॉ0 शुक्ल वस्तुशा0 भाग प्रतिमा लृ0 पृ0 111

49. राव0 गो0 ना0 ए0 हि0 आ0 पृ0 75–80

50. मानुषैः रचितं लिंग मानुषं चेति कथ्यते, मानसार, पृ0 48

51. मयमत अ0 33/21–27

52. वि0ध0 48/4

53. छत्र भाषा त्रभुभाषा भा कुक्कुट काण्डार्थ चन्द्र सहशायाः भयमत अ0 33/29

54. वि0ध0 48/2

55. लखनऊ संग्रहालय प्र0नं0 42

56. आश्वलायन गृह्य सूत्र 1, 9, 7, 3, 7, 4–6 सांख्यायन गृ0शू0 3, 8, 5, 6, 6, 4 गोभिल गृहयसूत्र 4, 6, 12

57. गिस्वल्ड ऋ0वे0पृ0 267

58. महा0सभा0 50/16

59. साधनमाला, पृ0 27

60. साधनमाला, पृ0 63

61. साधनमाला, पृ0 39–41

62. साधनमाला, पृ0 49, भट्टाचार्य इण्डियन बुद्धिस्ट आइक्नोग्राफी, पृ0 12, चि0–107

63. साधनमाला, पृ0 65

64. साधनमाला, पृ0 77, साधनमाला, पृ0 75–76

65. साधनमाला, पृ0 77, मूर्ति विलान, पृ0 – 200

66. साधनमाला, पृ0 80

67. साधनमाला, पृ0 83–84

68. साधनमाला, पृ0 – 86

69. साधनमाला, पृ0 86–87

70. साधनमाला, पृ0 88

71. साधनमाला, पृ0 89, जटामुकुटिंनं षडभुजं प्रथम भुजद्वयेन वरदौ द्वितीय, भुजद्धयेन रत्न पुस्तकौ तृतीय भुजद्धयेन अक्षमालात्रि दण्डिकम् सर्वालं कार भूषितम्''।

72. धर्मकोश संग्रह, भटाचार्य द्वारा उद्धत, वही पृ0 142,

73. साधनमाला, पृ0 33, जैन कला में

74. जैन, हीरालाल, भारतीय संस्कृति में लैन धर्म का योगदान, पृ0 342–43

75. तत्रैव, पृ0 – 32

76. रूपमण्डन 1/5, श्वेतश्च.....मृंग सन्निभम्।

श्रेयाः .....शुभा शिला।।

77. स्मरणीय है कि यक्षी की चारो भुजाओं में चक्र का प्रदर्शन देवी पर महाविद्या अप्रतिचक्र का स्पष्ट प्रभाव दरशाता है।

78. दीक्षित, एस0के0, ए गाईड टू दि स्टेट म्यूजियम धुवेला (नव गॉव), विन्ध्य प्रदेश, नवगॉव, 1957, पृ0 16–17

79. अमेरिकन इन्स्टि्यूट ऑफ इण्डियन, वाराणसी, चित्र संग्रह–104, 2

80. जे 847, जे 789, 66, 69, 12.0, 75

81. द्विभुजा चक्रेश्वरी का निरूपण मुख्यतः देवगढ़, खजुराहों एवं राज्य संग्रहालय लखनऊ की जिन संयुक्त मूर्तियों में ही हुआ। छह से बीस भुजाों वाली मूर्तियॉ भी मुख्यतः इन्ही स्थलों से मिली है।

82. मन्त्राधिराजकल्प

83. समुत्पन्नामजिताभिधानां यक्षिणीं गौरवर्णा लोहासना धिरूढ़ा चतुर्भूजा पक्षी के वरदपाशाधिष्ठित दक्षिणकरां, वीजपुरकांकुश–युक्त वामकरां चेति।।निर्वाणकालिका 18.2

84. त्रि0श0पु0 च0 2.3 845–46 पदमानन्द महाकाव्यः परिशिष्ट अजित स्वामीचरितत्र 21–22 मन्धाधिराजकल्प 3.52

85. आचारदिनकर 34, पृ0 176, देवता मूर्तिप्रकरण 7.21

86. देवी लोहासना रोहिणीव्याख्या चतुर्भूजा।

वरदाभयहस्ता सौ शंख चक्रोज्वलायुधा।। प्रतिष्ठासार संग्रह 5, 18

87. देवगढ़ की मूर्तियों पर श्वेताम्बर परम्परा की महाविद्या रोहिनी का प्रभाव है। गोवाहना रोहिणी महाविद्या की भुजाओं में वाण अभयमाला, धनुष एवं शंख प्रदर्शित है।

88. मित्रा, देवला, पू0नि0, पृ0 130

89. कुम्भारिया एवं विमलवसही की उपर्युक्त दोनों ही मूर्तियों की लाक्षणिक विशेषताएं श्वेतांवर ग्रन्थों में वर्णित मातंग की विशेषताओं के श्वेतांवर स्थलों पर इन्हीं लक्षणों वाले यक्ष को सभी सिनों के साथ निरूपित किया गया है और उसी पहचान सर्वानुभूति से की गयी है। ग्रन्थ के अनुसार ज्ञातव्य हैं कि कुम्भारिया की सुपार्श्व मूर्ति में यक्षी अम्बिका ही है।

90. जि0इ0दे0, पृ0 105

91. मित्रा, देवला, पू0नि0, पृ0 12

92. तीन सर्पफणों के छत्र वाली यक्षी का वाहन सम्भवतः कुक्कुट सर्प है और उसके करों में वरदमुद्रा, अंकुश, पदम एवं फल प्रदर्शित है।

93. जिन–संयुक्त मूर्तियॉ देवगढ़, खजुराहों, राज्य संग्रहालय लखनऊ (जे 881) एवं इलाहाबाद संग्रहालय (295) में है।

94. जि0इ0दे0, पृ0 107

95. श्वेतांवर परम्परा में सिंह वाहना महामानसी के मुख्य आयुध खड्ग एवं खेटक है।

96. मित्रा, देबला, पू0नि0 131

97. जि0इ0दे0, पृ0 107

98. मित्रा, देबला, पू0नि0, पृ0 131

99. बीज पूरक वीणा चित दक्षिणपाणिद्वयो–प्रवचन सारोद्धार 12.373, पृ0 93

100. पर दिगम्बर परम्परा में कभी–कभी कुमार को हिन्दू कुमार के समान ही षड्मुख एवं मयूर वाहन से युक्त भी निरूपित किया गया है।

101. जि0इ0दे0, पृ0 103

102. राव, टी0ए0 गोपीनाथ, पू0नि0, पृ0 358, 386

103. मित्रा, देवला, पू0नि0, पृ0 132

104. रामचन्द्रन, टी0एन0, पू0नि0 पृ0 207

105. जि0इ0दे0, पृ0 103, 106

106. मित्रा, देवला, पू0नि0, पृ0 132

107. पद्म का प्रदर्शन बौद्ध तारा का प्रभाव भी हो सकत है।

108. चामुण्डा जि0इ0दे0, पृ0 132

109. मित्रा, देवला, पू0नि0, पृ0 132

110. शाह, यू0पी0 अकोय ब्रो–जेज, पृ0 28–31

111. खजुराहो, देवगढ़, राज्य संग्रहालय लखनऊ, विमलवसही, कुम्भारिया, ऋण व सही से अम्बिका की चतुर्भुज मूतियॉ (10वीं–13वीं शती ई0) भी मिली हैं।

112. विमलवसही, कुम्भारिया (शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिों की देवकुलिकाओं) एवं कुछ अन्य स्थलों की मूर्तियों में कभी–कभी आम्रलुम्बि के स्थान पर फल (या अभय–या वरद मुद्रा) भी प्रदर्शित है।

113. यू0पी0 शाह ने ऐसी ही दो मूर्तियों का उल्लेख किया है, जिनमें बालक के स्थान पर अम्बिका के हाथ में फूल प्रदर्शित है, द्रष्टव्य, शाह, यू0पी0, आइकोनोग्राफी ऑवदि जैन गार्डेस अम्बिका, ज0मू0बा0, खं0 9, 1940–41, पृ0 155, चित्र 9 और 10

114. वि0ध0पु0, 90/21–22

115. वि0ध0पु0 55/9–13

116. शिल्परत्न, अ0 32

117. अंशु0, 69

118. ऋग्वेद, 1/164/16: अथर्वदेव, 108/27

119. म0पु0 261/1–8

120. शिल्परत्न, अ0–20

121. भण्डारकर, आर0जी0, शैव वैष्णव एवं अन्य धर्म

122. द्रष्टव्य – एय0एम0एल0जी0 397, 398, यच–21 यस 753, 56, 356, 58, 47, 66, 237

123. वृह0 58; प्रथमाधियोगसमुखः प्रलम्बजठरः कुठारीस्यात् एक विषाणो विभ्र–मूल कन्दं सुनील दल कन्दन्।

124. अमरकोश, स्वर्गवर्ग 11/38 : विनायक विघ्नराजो द्वैमातुर गणाधिपः। अप्येकदन्तः हेरम्ब लम्बोदर गजाननाः।।

125. म0पु0 260/50–55, विष्णु ध0पु0 61/13–16, 3/7/13–16

126. म0पु0 260, 50–55; 260, 52–55

127. ठाकुर उपेन्द्र, कार्तिकेय इन लिटरेचर, आर्ट एण्ड कवायन्स, 'ईस्ट एण्ड वेस्ट' पृ0–297–310

128. अम0 1/41–42

कात्तिकेय महासेनः सरजन्म षडानन्। पार्वतीनन्दन 5 स्कन्द सेनानी निर्गुहः।।

बाहुलेयष्टारकाजि द्विशाखः शिरिवाहनः। षण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः क्रौचधरः।।

129. वैनर्जी, डे0हि0आ0, पृ0 362

130. छा0उ0, 7/26ः भगवान सनत्कुमारस्तं स्कन्र्दत्या चक्षते

131. ईस्ट एण्ड वेस्ट, पृ0 299–300

132. वृ0सं0, 57/41 : स्कन्द कुमाररूप शक्तिधारा बर्हिकेतुश्चः

133. राव, गो0ना0ऐ0हि0आई0, जिल्द 2, भाग 2, पृ0 432–443

134. वृहत्संहिता, अध्याय 57/41

135. वि0ध0पु0, 371/3–6

136. रामायण, 5, 7, 14

137. मैके, फर्दर एक्सकेवेशन्स, ऐट मोहन जोदड़ों, जिन0 1 पृ0 208–09

138. ऋ0 10/115; 10/127

139. इण्डियन आर्ट, पृ0 24

140. मैकडानल, वैदिक माईयों लाजी पृ0–87, ऋ0वे0 5/136

141. मैकडानल, तत्रैव पृ0 – 124

142. अ0पु0 49/20, 50/16

143. वि0ध0पु0 64/1 से 3

144. बनर्जी,उ0हि0आई0, प्लेट 17–2

145. गोविन्द चन्द राय, प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा पृ0–13–18,

□□□□□